॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला

४

श्रीमदनुभूतिस्वरूपाचार्यप्रणीतं

सारस्वतव्याकरणम्

ालबोधिनी' 'इन्दुमती' संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेत

(पूर्वार्द्धम्)

संस्कृतव्याख्याकार.—

श्री पं० नरहरिशास्त्री पेण्डसे

हिन्दीव्याख्याकार.—

श्री पं० रामचन्द्रझा व्याकरणाचार्यः

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक व विक्रेता

पोस्ट बाक्स संख्या १३८

के० ३७/१३०, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

प्रकाशक

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

पोस्ट बाक्स संख्या १३८

के. ३७/१३०, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१

© चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी–२२१००१

पञ्चम संस्करण सन् १९८२ ई०

वि० सं० २०३९

मूल्य : [redacted]-००

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय

कचौड़ी गली

वाराणसी–२२१००१

मुद्रक—

विद्या विलास प्रेस

वाराणसी–२२१००१

प्राक्कथन

संस्कृत वाङ्मय मे व्याकरण शास्त्र का सबसे ऊँचा स्थान है। क्योंकि व्याकरण पढ़े बिना वेदार्थ या स्मृति, पुराणादि का ज्ञान हो ही नही सकता। कहा भी है—

यो वेद वेदवदनं सदनं हि सम्यग्
ब्राह्मयाः स वेदमपि वेद किमन्यशास्त्रम्।
यस्मादतः प्रथममेतदधीत्य विद्वान्
शास्त्रान्तरस्य भवति श्रवणेऽधिकारी॥

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष इन षडङ्गों ने व्याकरण वेद का मुखरूप प्रधान अंग है। जैसा कि कहा है **'मुखं व्याकरणं तस्य ज्यौतिषं नेत्रमुच्यते'** इत्यादि। जिससे साधु शब्दों का ज्ञान हो उसी का नाम व्याकरण है—**'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति शब्दज्ञानजनकं व्याकरणम्'**। व्याकरण निम्नोक्त हैं।—

ऐन्द्रं चान्द्रं काशकृत्स्नं जैनेन्द्रं शाकटायनम्।
सारस्वतं चापिशलं शाकलं पाणिनीयकम्॥

उपर्युक्त व्याकरणों मे लौकिक, वैदिक सभी साधु शब्दों का ज्ञान करानेवाला पाणिनीय व्याकरण ही साङ्गोपाङ्ग उपलब्ध होता है, अतएव विश्व में उसका सबसे ऊँचा स्थान है, परन्तु वह अगाध और दुरुह है। अल्प वयस्क बालकों को लौकिक सुरभारती का झटिति ज्ञान कराने के लिए महामनीषी महोपाध्याय श्री अनुभूतिस्वरूपाचार्य विरचित प्रस्तुत सारस्वत व्याकरण सबसे लघु और सरल है। आचार्यजीने महामुनि पाणिनि प्रणीत अष्टाध्यायी के दो दो सूत्रों का अर्थ अपने प्रणीत एक ही लघु सूत्र से कर दिया है। किं बहुना, कहीं-कही तो आपने अपने सूत्रों का कलेवर ही ऐसा कर दिया है कि वहां कात्यायन का वार्तिक पनपने ही नहीं पाता। अस्तु, जो कुछ भी हो, इतना तो निर्विवाद सिद्ध है कि सुरभारती के पुनरुत्थान में स्वतन्त्र भारत के लिये आपका यह लघु ग्रन्थ जितना सरल और उपादेय है उतना किसी भी व्याकरण का ग्रंथ नही है।

पण्डित अनुभूतिस्वरूपाचार्य

पं० अनुभूतिस्वरूपाचार्य का इतिवृत्त अभी तक प्रकाश मे नही आया सारस्वत व्याकरण के प्रामाणिक टीकाकार चन्द्रकीर्ति, भट्ट वासुदेव, माधव,

जगन्नाथ आदि मनीषियो ने भी इसकी गवेषणा नही की है। दाक्षिणात्य परम्परा से इतना ही ज्ञात होता है कि आप दाक्षिणात्य ब्राह्मण थे और ५वी शदी के विद्वानों मे आपका प्रमुख स्थान है। अन्तिम समय मे आपका महाप्रयाण काशी मे हुआ। काशीवास के समय ही आपने इस ग्रन्थ की रचना की ऐसा आप ही के निम्न मङ्गलाचरण से ज्ञात होता है। द्वितीय वृत्ति के प्रारम्भ मे आप स्वयं लिखते है—

लक्ष्मीनृसिंहौ प्रणिपत्य काश्यां बुधांश्च पद्माकरभट्टमुख्यान्।
सारस्वतीयां च तिवादिवृत्तिं क्रमाल्लिखेयं गणपप्रसादात्॥

आप व्याकरण के उद्भट विद्वान् थे। आपके प्रखर पाण्डित्य के सामने अवनत होकर आपके सहपाठी विद्वान् छिद्रान्वेषण मे सदत सतर्क रहते थे। एकदा विद्वत्मण्डली मे शास्त्रार्थ समय आपके मुख से प्रमादवश 'पुक्षु' (असाधु) शब्द का प्रयोग निःसरित हो जाने पर आपके प्रतिस्पर्धी छिद्रान्वेषी विद्वान् झट उठकर असाधु! असाधु!! की ध्वनि से आपका अनादर करते हुए 'पुक्षु' शब्द की साधुता के लिये आपको अप्रतिभ करने लगे। उस समय कर्मठ विद्वानो मे आप प्रथम गिने जाते थे। आपने तत्क्षण ही 'पुक्षु' शब्द की साधुता की प्रतिज्ञा साध ली और महामुनि पाणिनि की तरह भगवती सरस्वती ने आपको वरदान दिया और उसीके फलस्वरूप आप रात भर मे ही इस व्याकरण की रचनाकर इसका नाम सारस्वत व्याकरण' रख दिया। आपका यह व्याकरण लौकिक सुरभारती शब्दों की साधुता की कसौटी है। 'पुक्षु' ऐसे कितने ही प्रचलित शब्द आपके व्याकरण से साधु माने जाते हैं।

इन्दुमती

आचार्य का यह ग्रन्थ इतना सरल और सुबोध है कि इसकी टीका की आवश्यकता ही नहीं है। 'चन्द्रकीर्ति आदि टीकाओं से केवल इस ग्रन्थ की महत्ता ही बढी, न कि ग्रंथ सुलभ हुआ है। इस संस्करण की 'बालबोधिनी' संस्कृत टीका ही बच्चों के लिये पर्याप्त थी किन्तु प्रकाशक महोदय के आग्रह से मैंने इस संस्करण को 'इन्दुमती' हिन्दी टीका के आलोक मे लाकर मूल पाठ का भी परिष्कार कर दिया है। आशा है बालकों का इसते अधिक उपकार होगा।

रङ्गभरी ११ | विनयावनत—
सं० २०११ | रामचन्द्र झा

॥ श्रीः ॥

सारस्वतव्याकरणम्

'बालबोधिनी' 'इन्दुमती' व्याख्याद्वयोपेतम्

अथ संज्ञाप्रक्रिया

प्रणम्य (१) परमात्मानं बालधीवृद्धिसिद्धये ।
सारस्वतीमृजुं कुर्वे प्रक्रियां नातिविस्तराम् ॥ १ ॥
इन्द्रादयोऽपि(२) यस्यान्तं न ययुः शब्दवारिधेः ।
प्रक्रियां तस्य कृत्स्नस्य क्षमो वक्तुं नरः कथम् ॥ २ ॥

---

* बालबोधिनी *

(१) अनधीतव्याकरणशास्त्राणां बालानां सरलतया सुखकरबोधाय परमेश्वरं नमस्कृत्य विस्तररहितां सरस्वतीप्रोक्तां सरलां व्याकरणसम्बन्धिनीं प्रक्रियां (अनुभूतिस्वरूपाचार्योऽहम्) दर्शयामि । अनेन ग्रन्थारम्भे 'विषयः, प्रयोजनम्, सम्बन्धः, अधिकारी'ति अनुबन्धचतुष्टयमपि निर्दशितम् । (२) इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः । पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टाऽऽदिशाब्दिकाः ॥ भूतभविष्यद्वर्तमानविषयकज्ञानवन्तो योगिनोऽपि यस्य शब्दा-

---

* इन्दुमती *

रामचन्द्रं नमस्कृत्य रामचन्द्रेण धीमता ।
मनसीन्दुमतीं ध्यात्वा रचितेन्दुमती मुदा ॥

प्रणम्य—मैं अनुभूतिस्वरूपाचार्य परब्रह्म परमात्माको प्रणाम करके बालकों की वुद्धि बढ़नेकी सिद्धिके लिये अर्थात् व्याकरण शास्त्रमें बालोंके झटिति प्रवेश के लिये, संक्षेपमें श्रीभगवती सरस्वती प्रणीत सूत्रसम्बन्धिनी प्रक्रिया (शब्द-व्युत्पादन विद्या) को सरल करता हूँ ॥

इन्द्रादयोऽपि—इन्द्रादि देवता भी जिस शब्दार्णवका अन्त नहीं पाये, उस

तत्र तावत्संज्ञा संव्यवहाराय संगृह्यते ॥

(१) **अइउऋऌ समानाः ॥१॥** अनेन (२)प्रत्याहारग्रहणाय वर्णाः परिगण्यन्ते तेषां समानसंज्ञा च विधीयते। नैतेषु सूत्रेषु सन्धिरनुसन्धेयः। अविवक्षितत्वात्, 'विवक्षितस्तु सन्धिर्भवति' इति नियमात्, लौकिकप्रयोगनिष्पत्तये समयमात्रत्वाच्च (३) ॥ १ ॥

र्णवस्य पारं न गच्छेयुः, तस्य सकलस्य शब्दसमुद्रस्य शब्दव्युत्पत्तिं कथयितुं पामरोऽहं कथं समर्थो भविष्यामीति भावः।

(१) स्वप्रणीतव्याकरणशास्त्रव्यवहारोपयोगिनं सूत्रोक्ताधुनिकसङ्केतं दर्शयति। अ इ उ ऋ ऌ समाना इति। समानसंज्ञका इत्यर्थः। (२) प्रत्याहारग्रहणायेति। प्रत्याह्रीयन्ते संह्रीयन्ते वर्णा यत्र स प्रत्याहारः। (३) चेति। लौकिकशब्दव्यवहारे प्रसिद्धा ये वर्णाः, तेषां स्वरूपज्ञानायैषु सन्धिकार्यं न कृतम्। अन्ये तु अ इ उ ऋ ऌ इत्यादीनि साधुत्वबोधकानि पृथक्सूत्राणि परिकल्प्य 'स्वभावतोऽर्धमात्राविलम्बेनोच्चार्यमाणं वर्णान्तरं यत्र तत्रैव संहिता' इति संहितायाः नियमात्, प्रकृते चाकारोच्चारणानन्तरं पदान्तत्वाद्विलम्ब्य इकारोच्चारणेनात्र नित्यसंहिताया, विषयाऽभावादेव न सन्धिकार्यमित्यपि कथयन्ति। नित्यसंहिता च 'संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः। नित्या समासे वाक्ये तु सा विव-

---

कृत्स्न, (समस्त) अगाध शब्दसमुद्र व्याकरणकी प्रक्रियाको कहनेके लिये मेरे समान साधारण मनुष्य कैसे समर्थ हो सकता है ? (इसलिये मैं संक्षेपमें ही इस ग्रन्थका निर्माण करता हूँ) ॥ २ ॥

नोट—शब्दशास्त्र (व्याकरण) अगाध है। आज तक इसका अन्त कोई नहीं पाया। सुरगुरु बृहस्पतिने भी एक हजार वर्ष निरन्तर भगवान् इन्द्रको प्रतिपदपाठ द्वारा शब्दोपदेश किया, परन्तु वे भी इस शास्त्रका अन्त न पा सके। जैसा कि पातञ्जल महाभाष्यमें लिखा है—**'बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपारायणं प्रोवाच नान्तं जगाम।'**

अ इ उ—अ इ उ ऋ ऌ इनकी समान संज्ञा है।

(१) ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदाः सवर्णाः ॥ २ ॥ एतेषां ह्रस्वदीर्घप्लुतभेदाः परस्परं सवर्णा भण्यते (२) लोकाच्छेषस्य सिद्धिरिति वक्ष्यति। ततो लोकत एव ह्रस्वादिसंज्ञा ज्ञातव्याः। एकमात्रो ह्रस्वः। द्विमात्रो दीर्घः। त्रिमात्रः प्लुतः। व्यञ्जनं चार्धमात्रकम्। एषां मध्ये नुदात्तादिभेदाः सन्ति। उच्चैरुपलभ्यमान उदात्तः। नीचैरनुदात्तः। समवृत्त्या स्वरितः। सानुनासिको निरनुनासिकश्च।

क्षामपेक्षते ॥' इत्यभियुक्तवचनात्। (१) ह्रस्वदीर्घप्लुतभेद इति। ह्रसतीति ह्रस्वः, दीर्घापेक्षयेति शेषः। विदारयति मुखमिति दीर्घः। प्लवते–उल्लंघयति ह्रस्वदीर्घौ स प्लुतः। सदृशा वर्णाः सवर्णाः। सवर्णसंज्ञका इत्यर्थः। संज्ञाप्रयोजनं चाग्रे 'सवर्णे दीर्घः सहे'ति सूत्रे वक्ष्यते। (२) ननु ह्रस्वदीर्घप्लुतानां सवर्णसंज्ञाकृतेऽपि को ह्रस्वः कश्च दीर्घः प्लुतश्च कीदृशो ज्ञातव्य इति शङ्कायामाह–'लोकाच्छेषस्य सिद्धि'रिति, तथाहि लोके 'चाषो वदत्येकमात्रं, द्विमात्रं वायसो वदेत् ॥ त्रिमात्रं च शिखी ब्रूयात्, नकुलश्चार्धमात्रिकम् ॥ १ ॥' अत एव पाणिनिनापि स्वव्याकरणे लोकप्रसिद्धकुक्कुटरुतमनुगृह्य 'ऊकालोऽज्झ्रस्व

ह्रस्वदीर्घ—(अ इ उ ऋ लृ इन वर्णचतुष्टय के) ह्रस्वदीर्घ प्लुत भेद परस्पर सवर्ण कहे जाते है।

नोट—स्वर (अच्) वर्ण तीन प्रकारके होते हैं—ह्रस्व एकमात्रिक, दीर्घ द्विमात्रिक और प्लुत त्रिमात्रिक। किन्तु व्यञ्जन (हल्) वर्ण अर्धमात्रिक ही होते हैं। तद्यथा—

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम् ॥

एषामिति—इनके और भी उदात्तादि भेद है अर्थात् ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञक प्रत्येक अच् वर्ण उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेदसे तीन तीन प्रकारका होता है। **उच्चैः**—उच्च स्थानमें उपलभ्यमान अर्थात् नाल्वादि स्थानोंके ऊर्ध्व भागमें उच्चारित जो अच् वह 'उदात्त' कहलाता है। **नीचैः**—नीच स्थानमे अर्थात् तालवादि स्थानोंके अधोभागमें उच्चारित जो अच् वह 'अनुदात्त' कहलाता है। **समवृत्त्या**—ऊँचे नीचे अर्थात् उदात्त और अनुदात्त दोनों जिस स्वरमें सम्मिलित हों उसे 'स्वरित' कहते हैं। **सानुनासिकः**—

ए ऐ ओ औ (१) संध्यक्षराणि ॥ ३ ॥ एषां ह्रस्वा न सन्ति ॥ ३ ॥

उभये स्वराः ॥४॥ अकारादयः पञ्च एकारादयश्चत्वार इत्युभये स्वरा उच्यन्ते ॥ ४ ॥

दीर्घप्लुत' इति सूत्रितम् । (१) अ+इ=ए । अ+ए=ऐ । अ+उ=ओ । अ+ओ=औ । इति सन्धिसिद्धानि अक्षराणि ।

सानुनासिक और निरनुनासिकके भी भेद है । जैसे—मुख और नासिका (उभय) से उच्चारित जो वर्ण वह सानुनासिक और केवल मुखसे उच्चारित जो वर्ण वह निरनुनासिक वर्ण कहलाता है । **ए ऐ ओ औ**—ए ऐ ओ औ ये सन्ध्यक्षर हैं, अर्थात् अ+इ=ए, अ+ए=ऐ, अ+उ=ओ, अ×ओ=औ, इस प्रकार ये सन्धिसिद्ध अक्षर है । इन सन्ध्यक्षरोंके ह्रस्वभेद नहीं है—ये केवल दीर्घ और प्लुतभेदसे दो दो प्रकारके ही होते है । **उभये**—अकारादि पाँच—अ इ उ ऋ लृ और एकारादि चार—ए ऐ ओ औ मिलकर नव प्रकारके स्वर कहे जाते है ।

नोट—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित भेदसे नव प्रकारका ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत संज्ञक 'स्वर' पुनः अनुनासिक और निरनुनासिक भेदसे दो दो प्रकारका होता है । इसलिये स्वरवर्णोंका अष्टादश भेद समझना चाहिये । (निम्न कोष्ठक देखो)

ह्रस्वभेद	दीर्घभेद	प्लुप्तभेद
१ ह्रस्व उदात्तानुनासिक	७ दीर्घ उदात्तानुनासिक	१३ प्लुत उदात्तानुनासिक
२ ,, उदात्ताननुनासिक	८ ,, उदात्ताननुनासिक	१४ ,, उदात्ताननुनासिक
३ ,, अनुदात्तानुनासिक	९ ,, अनुदात्तानुनासिक	१५ ,, अनुदात्तानुनासिक
४ ,, अनुदात्ताननुनासिक	१० ,, अनुदात्ताननुनासिक	१६ ,,अनुदात्ताननुनासिक
५ ,, स्वरितानुनासिक	११ ,, स्वरितानुनासिक	१७ ,, स्वरितानुनासिक
६ ,, स्वरिताननुनासिक	१२ ,, स्वरिताननुनासिक	१८ ,, स्वरिताननुनासिक

अवर्जा नामिनः ॥ ५ ॥ अवर्णवर्जाः स्वरा नामिन उच्यन्ते । अनुक्रान्तास्तावत्स्वराः । प्रत्याहारं (१) जिग्राहयिषया व्यञ्जनान्यनुक्रामति । (२) हयवरल, ञणनङम, झढधघभ; जडदगब, छठथखफ, चटतकप, शषसेति ॥५॥

आद्यन्ताभ्याम् ॥ ६ ॥ प्रत्याहारं (३) जिघृक्षता आद्यन्ताभ्यामेते वर्णा ग्राह्याः । आदिर्वर्णोऽन्त्येन सह गृह्यमाणस्तन्नामा प्रत्याहारः । तथाहि अकारो वकारेण सह गृह्यमाणः **अब** प्रत्याहारः । स च **अइउऋलृ, एऐओऔ, हयवरल, ञणनङम, झढधघभ, जडदगब,** इत्येतावत्संख्याकः संपद्यते । चटतकप इति **चप** प्रत्याहारः । झढधघभ इति **झभ** प्रत्याहारः । जडदगब इति **जब** प्रत्याहारः । ञणनङम इति **ञम** प्रत्याहारः । एवं यत्र यत्र येन येन प्रत्याहारेण कृत्यं स तत्र तत्र ग्राह्यः । (४) संख्यानियमस्तु नास्ति ॥ ६ ॥

---

(१) प्रतिकार्यमाह्रियन्ते ते प्रत्याहाराः । गृहीतुमिच्छया जिग्राहयिषया । (२) प्रत्याहारोपयुक्तानि हकारादीनि व्यञ्जनानि सूत्रेऽनुक्तान्यपि दर्शयति—हयवरलेति । (३) जिघृक्षता गृहीतुमिच्छता एते वर्णा ग्राह्याः । एतदेव च पाणिनिव्याकरणे 'आदिरन्त्येन सहेते'ति सूत्रेण बोधितम् । (४) प्रत्याहाराणां संख्यानियमो नास्ति तथापि बालबोधार्थमस्मिन् शास्त्रे चतुर्विंशतिरुपयुज्यमाना प्रत्याहाराः प्रदर्श्यन्ते ।

अवर्जा—अवर्ण (अ आ) को छोड़कर अन्य स्वर (इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ लॄ ए ऐ ओ औ) नामिसंज्ञक होते है । **आद्यन्ता—(प्रत्याह्रियन्ते = संक्षिप्यन्ते वर्णा यत्रेति प्रत्याहारः)** प्रत्याहारको ग्रहण करनेकी इच्छावाले छात्र आदि-अन्तके उभय वर्णोंके सहित हकारादि सकारपर्यन्त तैंतीस हस वर्णोंका ग्रहण करें आदि मे जो अक्षर है वह अन्त के अक्षर के सहित उच्चारण करनेसे उस नामका प्रत्याहार होता है । यथा अकार बकारके सहित उच्चारण किया हुआ जो 'अब' प्रत्याहार है, वह 'अ इ उ' आदिसे लेकर 'ब' पर्यन्त २६ अक्षरका होता हैं ।

नोट—प्रत्याहार जाननेके लिये निम्न पद्य अभ्यास करने योग्य है :—

हसो झभो जबश्चैव यपो अब इलश्चपः ।
ञमो झभः खसः प्रोक्तो झसश्च छत ईरितः ॥
यमो हवः खपश्चोक्तो डबश्च ढभ इष्यते ।
रसो वसः शसः ख्यातो झपो अब उदाहृतः ॥
ओ उच्यते तदा प्राज्ञः प्रत्याहारा उदीरिताः ।
सोत्रा एते स्फुटा ज्ञेयास्तथाचान्ये यथामतिः ॥

हसा व्यञ्जनानि ।।७।। हकारादयः सकारान्ता वर्णा हसा व्यञ्जनानि भवन्ति । स्वरहीनं (१) व्यञ्जनम् । तेष्वकारः सुखोच्चारणार्थत्वादित्संज्ञको भवति ।। ७ ।।

कार्यायित् ।। ८ ।। (२) प्रत्ययाद्यतिरिक्तः कस्मैचित्कार्यायोच्चार्यमाणो वर्णः (३) इत्संज्ञको भवति । यस्येत्संज्ञा तस्य लोपः । प्रत्ययादर्शनं लुक् । वर्णादर्शनं **लोपः** । वर्णविरोधो **लोपश्** । मित्रवदा**गमः** । शत्रुवदा**देशः** । स्वरानन्तरिता हसाः **संयोगः** । (४) कु चु टु तु पु **वर्गाः** । उकारः पञ्चवर्णपरिग्रहणार्थः ।। ८ ।।

अरेदोन् नामिनो गुणः ।। ९ ।। (५) नामिस्थानिका अर् ए ओ एते गुणसंज्ञका भवन्ति ।। ९ ।।

१ हस	२ झभ	३ जब	४ यप	५ अब	६ इल
७ वप	८ अम	९ झभ	१० खस	११ झस	१२ छत
१३ यम	१४ हब	१५ खप	१६ डब	१७ ढम	१८ रस
१९ वस	२० शस	२१ झप	२२ अब	२३ ओ	२४ भव

एवं चतुर्विंशतिः प्रत्याहारा दृश्यन्ते

(१) स्वरेभ्यो भिन्नम् आकारादिस्वररहितञ्च व्यञ्जनम् । (२) प्रत्ययादीति—अत्रादिपदेनाऽऽगमादेशानां ग्रहणम् । (३) इत् इत्संज्ञकः । या या संज्ञा सा सफलवतीति नियमेन यस्येत्संज्ञा तस्य लोपः क्रियते । उच्चरितप्रध्वंसिनो ह्यनुबन्धाः । (४) कु इति पदेन क, ख, ग, घ, ङ, इति पञ्चानां बोधः । प्रयोजनं च 'स्तोश्चुभिः श्चुः' इति सूत्रे वक्ष्यते । (५) अ—(अर्—अल्,) ए, ओ, एते गुणसंज्ञकाः । अत्र तपरकरणमसन्देहार्थम् । अत्र सूत्रे

हसा—'हस' प्रत्याहारान्तर्गत हकारादि सकारान्त वर्ण व्यञ्जन वर्ण कहलाते हैं, व्यञ्जन वर्ण स्वरहीन होते हैं। उनमें जो अकारादि स्वर लगे है वे केवल उच्चारणमात्र करनेके लिये हैं—उनकी इत्संज्ञा हो जाती है।

कार्या—प्रत्यय, आगम, आदेश, उपदेश इनसे अतिरिक्त किसी कामके लिये उच्चारण किया हुआ वर्ण इत्संज्ञक होता है। **यस्य**—जिस वर्ण की इत्संज्ञा होती है उसका लोप (दर्शनाभाव) हो जाता है। **अरेदो**—नामिन्के

आरै औ वृद्धिः ॥१०॥ आ आर् ऐ औ एते वृद्धिसंज्ञका भवन्ति ॥१०॥

(१) **अन्त्यस्वरादिष्टिः ॥११॥** अन्त्यो यः स्वरस्तदादिर्वर्णः स टिसंज्ञको भवति ॥११॥

अन्त्यात्पूर्व उपधा ॥ १२ ॥ अन्त्याद्वर्णमात्रात्पूर्वो यो वर्णः स उपधासंज्ञको भवति । असंयोगादिपरो ह्रस्वो **लघुः** । विसर्गानुस्वारसंयोगादिपरो दीर्घश्च **गुरुः** ॥

मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः ॥ १२ ॥ मुखनासिकाभ्यामुच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकः । द्विबिन्दु**र्विसर्गः** । शिरोबिन्दु**रनुस्वारः** । अकुहविसर्जनीयानां **कण्ठः** । इचुयशानां **तालु** । ऋटुरषाणां **मूर्धा** । लृतुलसानां **दन्ताः** । उपूपध्मानीयाना**मोष्ठौ** । ञमङणनानां **नासिका** च । एदैतोः **कण्ठतालु** । ओदौतोः **कण्ठोष्ठम्** । वकारस्य **दन्तोष्ठम्** । (२)⌒क इति **जिह्वामूलीयः** । ⌒प इत्यु**पध्मानीयः** । अं इत्य**नुस्वारः** । अः इति **विसर्गः** । वर्णग्रहणे सवर्णग्रहणम् । कारग्रहणे केवलग्रहणम् । तपरकरणं तावन्मात्रार्थम् । अनुक्ता अपि ज्ञेयाः ।

इति संज्ञाप्रक्रिया

—:०:—

लृकारस्थाने जायमानस्य 'अल्' गुणस्यानुपादानेऽपि तत्रान्तरोक्तम् 'ऋलृवर्णयोः सावर्ण्यंवाच्य'मित्युपलक्षणतया ग्राह्यमिति सूत्रकाराशयः । तेन 'तवल्कार' इत्यस्य सिद्धिः ।

(१) **टि संज्ञेति । स अन्त्यस्वर आदिर्यस्य सः । तदादिः ।** (२) **जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ अर्धविसर्गौ ज्ञेयौ अनुस्वारविसर्गाणां स्वरधर्मत्वाद्यस्वरमकारं गृहीत्वा 'अं-अः' कथनम् । एवं चानुस्वारविसर्गौ सर्वेषां स्वराणां धर्मा इति ज्ञातव्यम् ।** इति संज्ञाप्रक्रिया

—*—

स्थानमें जायमान अर् (ल्), एत् और ओत् की गुण संज्ञा होती है । **आरै**—नामिन्के स्थानमें जायमान आ, आर् (ल्) ऐ और औ की वृद्धि संज्ञा होती है । **अन्त्य**—अन्त्य जो स्वर वही है आदि वर्ण जिसका उसकी ही टिसंज्ञा होती है । **अन्त्यात्**—अन्त्य वर्णमात्रसे पूर्व जो वर्ण उसकी उपधा संज्ञा होती है । **मुखनासिका**—मुख और नासिका (उभय) से जिस वर्णका उच्चारण हो वह अनुनासिक वर्ण कहलाता है ।

इति संज्ञाप्रक्रिया

—:०:—

अथ स्वरसन्धिप्रकरणम्

इ यं स्वरे ॥ १ ॥ इवर्णो यत्वमापद्यते स्वरे परे। दधि आनय इति स्थिते दध य् आनय इति तावद्भवति ॥ १ ॥

हसेऽर्हं हसः ॥ २ ॥ स्वरात्परो रेफहकारवर्जितो हसो हसे परे द्विर्भवति। इति धकारस्य द्वित्वम्। पुनर्द्वित्वे प्राप्ते न द्विरुक्तस्य द्विरुक्तिः। द्वित्वविधानसामर्थ्याद् द्वावेव निष्पद्येते अन्ये हमा लुप्यन्ते ॥ २ ॥

झभे जबाः ॥ ३ ॥ झसानां झभे परे जबा भवन्ति इति पूर्वधकारस्य दकारः। सवर्णत्वात् ॥ वर्ग्यो वर्ग्येण सवर्णः' इति वचनात् (१) यथासंख्यं वा वक्तव्यम्। **स्वरहीनं परेण संयोज्यम्*** दध्यानय इति सिद्धम्। गौरी अत्र। अर्हं इति विशेषणान्न रेफस्य द्वित्वं किन्तु ॥ ३ ॥

राद्यपो द्विः ॥ ४ ॥ स्वरपूर्वाद्रेफात्परो यपो द्विर्भवति। (२) जलतुम्बिकान्यायेन रेफस्योर्ध्वगमनम्। गौर्य्यत्र। स्वर इत्यनुवर्तते। एवमन्यत्रापि। यत्र न सूत्राक्षरैः कार्यसिद्धिस्तत्र सर्वत्र सूत्रान्तरात्पदानुवृत्तिर्ज्ञातव्या। ग्रन्थभूयस्त्वभयान्नास्माभिर्लिख्यते ॥ ४ ॥

उ वम् ॥५॥ उवर्णो वत्वमापद्यते (३) स्वरे परे। मधु अत्र मध्वत्र ॥५॥

---

(१) यथासंख्यं वा वक्तव्यमिति। 'यथासंख्यमनुदेशः समानाम्' इति पाणिनिसूत्रम्। समसंख्याकानामुद्देश्यविधेयानां यथानुपूर्व्येणैव सम्बन्धः कर्तव्यः यथा च—यथासंख्याऽलङ्कारे 'शत्रुं, मित्रं, विपत्तिं, च जय, रञ्जय, भञ्जय' इत्यादौ 'शत्रुं जय, मित्रं रञ्जय, विपत्तिं भञ्जय' इत्येवान्वयः। (२) यथा तुम्बीफलं जलोपरि तिष्ठति तथा रेफस्योर्ध्वलेखन न अधः। तुम्बिकातृणकाष्ठं च तैलं जलसमागमे। ऊर्ध्वस्थानं समायान्ति रेफाणामीदृशी गतिः॥ रेफः स्वरपरं वर्णं दृष्ट्वा रोहति तच्छिरः। पुरस्थितं यदापश्येदधः संक्रामते स्वरम् ॥ २ ॥ (३) स्वरे परे इति पाणिनिशास्त्रे प्रतिपादितं 'तस्मिन्निति निर्दिष्टे पूर्वस्य' इति सूत्रार्थं मनसि निधायाऽऽह परे इति।

इ यं स्वरे—इवर्ण (इ ई) के स्थानमे यत्व हो (असमान) स्वर वर्णके परे। **हसेऽर्हं**—स्वर वर्णसे पर रेफ-हकारवर्जित हसको द्वित्व हो हसके परे। **झभे जबाः**—झसके स्थानमे जब हो झसके परे। **स्वरहीनं**—स्वरसे हीन वर्णको अग्रिम स्वर वर्णके साथ मिला देना चाहिये। **राद्यपो**—स्वरपूर्ववाले रेफसे पर यप प्रत्याहारको द्वित्व हो। **उ वम्**—उवर्ण वत्वको

ऋ रम् ॥ ६ ॥ ऋवर्णो रत्वमापद्यते स्वरे परे । पितृ अर्थः पित्रर्थः ॥६॥

लृ लम् ॥ ७ ॥ लृवर्णो लत्वमापद्यते स्वरे परे । लृ अनुबन्धः लनुबन्धः ॥ ७ ॥

ए अय् ॥ ८ ॥ एकारो अय् भवति स्वरे परे । ने अनं नयनम् ॥ ८ ॥

ओ अव् ॥ ९ ॥ ओकारो अव भवति स्वरे परे । लो अनम् लवनम् । गो अति भवति ॥ (१) **गवादेरवर्णागमोऽक्षादौ वक्तव्यः*** गो अक्ष. गवाक्षः । गो इन्द्रः गवेन्द्रः । गो अजिनम् गवाजिनम् । प्र ऊढ. प्रौढ. । स्वर ईरिणी स्वैरिणी । अक्ष ऊहिनी अक्षौहिणी सेना । क्वचित्स्वरवद्यकारः । यथाऽध्व-परिमाणे गव्यूतिः । अन्यत्र गवां मिश्रीभावे गोयूतिः । न व्यञ्जने स्वराः सन्धेयाः देवीगृहम् ॥

ऐ आय् ॥ १० ॥ ऐकार आय् भवति स्वरे परे । नै अकः नायकः ॥१०॥

औ आव् ॥११॥ औकार आव् भवति स्वरे परे । तौ इह ताविह ॥११॥

य्वोर्लोपश् वा पदान्ते ॥ १२ ॥ पदान्ते स्थितानामयादीनां यकार-वकारयोर्लोपश् वा भवति स्वरे परे । तौ इह ताविह ता इह । ते आगताः तयागता. त आगताः । पटो इह पटविह पट इह । तस्मै एतत् । तस्मायेतत् तस्मा एतत् । (२) लोपशि पुनर्न सन्धिः छन्दसि तु भवति । हे सखे इति हे

---

(१) **गवाक्षश्च गवेन्द्रश्च सवाग्रं च गवाजिनम् ।**
स्वैरमक्षौहिणी प्रौढ एते प्रोक्ता गवादयः ॥ १ ॥

(२) **लोपशि पुनर्न सन्धिः पाणिनीयशास्त्रे 'लोपः शाकल्यस्य' इत्यनेन लोपे 'पूर्वत्रासिद्ध'मित्यनेन लोपस्याऽसिद्धत्वात् मध्ये च वर्णबुद्ध्या न स्वरसन्धिः ।**

प्राप्त करे स्वर पर होनेसे । अर्थात् स्वर वर्ण परमे हो तो उवर्ण (उ ऊ) के स्थानमें 'व' हो जाय । **ऋ रम्**—स्वरवर्णके परे ऋवर्ण रत्वको प्राप्त करे, अर्थात् ऋ अथवा ऋ के स्थानमे 'र्' हो जाय । **लृ लम्**—स्वर वर्णके परे लृवर्ण लत्वको प्राप्त करे, अर्थात् लृकार (लृ लॄ) के स्थानमे लकार हो जाय । **ए अय्**—ए के स्थानमें अय् हो, स्वर वर्णके परे । **ओ अव्**—ओकार-के स्थानमें अव् हो, स्वर वर्णके परे । **गवादेः**—गो आदि शब्दोंको अकारका आगम हो, अक्षादि शब्दोंके परे । **ऐ आय्**—ऐ के स्थानमें आय् हो, स्वर वर्णके परे । **औ आव्**—औके स्थानमें आव् हो, स्वर वर्णके परे । **य्वोर्लोपश्**—पदान्तमे स्थित अय्, आय्, अव्, आव् सम्बन्धी यकार, वकारका

सखयिति हे सखेति ॥ १२ ॥

एदोतोऽतः (१) ॥१३॥ पदान्ते स्थितादेकारादोकाराच्च परस्याकारस्य लोपो भवति। ते अत्र तेऽत्र। पटो अत्र पटोऽत्र ॥ १३ ॥

सवर्णे दीर्घः सह ॥ १४ ॥ सवर्णस्य सवर्णे परे सह दीर्घो भवति। श्रद्धा अत्र श्रद्धात्र। दधि इह दधीह। भानु उदयः भानूदयः। पितृ ऋण पितॄणम्। दण्ड अग्रं दण्डाग्रम् ॥ १४ ॥

'अदीर्घो दीर्घतां याति नास्ति दीर्घस्य दीर्घता।
पूर्वदीर्घस्वरं दृष्ट्वा परलोपो विधीयते ॥ १ ॥
(२) सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्।
परेण पूर्वबाधो वा प्रायशो दृश्यतामिह ॥ २ ॥

एतद्वचनं 'य, व' मात्रविषयकम्, अन्यवर्णलोपे तु स्वरसन्धिर्भवत्येव यथा दामोदरः, राजाश्वः, पञ्चाग्निः, अत्र नकारलोपेऽपि सन्धिर्भवत्येव। (१) एदोतोऽतः। पाणिनिना स्वशास्त्रे 'एङः पदान्तादति' इति सूत्रेण ह्रस्वाकारस्य पूर्वरूपविधानात् तदनुरोधेन लौकिकलेखने अवग्रहचिह्नं सर्वत्र दृश्यते। (२) ननु 'दधि × इह' एत्यत्र 'इयं स्वरे' इत्यनेन यत्वं कथं न भवति इत्यत आह? सामान्येति। सामान्यं व्यापकम्, विशेषं व्याप्यम्। विशेषशा-

---

लोपश् (लोप) हो, विकल्पसे। **एदो**—पदान्त एकार और ओकारसे पर जो अकार उसका लोप हो।

सवर्णे—सवर्णको दीर्घ हो, सवर्णके परे अर्थात् जिस सवर्णके आगे सवर्ण हो वे दोनों मिलके दीर्घ होते हैं।

अदीर्घो—'सवर्णे दीर्घः' इसी सूत्रका यह सारांश है। अर्थात् अदीर्घ (ह्रस्व) जो स्वर है वह आगेके सवर्ण ह्रस्व वा दीर्घ स्वर वर्णसे मिलकर दीर्घ हो जाता है, किन्तु जहाँ पूर्व स्वर वर्ण रहता है वहाँ आगे ह्रस्व वा दीर्घ रहने पर भी पूर्व दीर्घ वर्ण को दीर्घ नहीं होता, किन्तु पूर्व दीर्घ स्वरको देखकर स्वर (ह्रस्व वा दीर्घ) वर्णका लोप हो जाता है ॥ १ ॥

सामान्य—सामान्य शास्त्र (सूत्र) से विशेष शास्त्र बलवान् होता है, यह निश्चय है, अत एव 'दधि × इह' यहाँ पर 'इयं स्वरे' को बाधकर 'सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ होता है, क्योंकि 'इयं स्वरे' में सामान्यतया स्वरवर्णका

अ इ ए ॥ १५ ॥ अवर्ण इवर्णे परे सह ए भवति। तत्र इदं तवेदम्। मम इदं ममेदम् ॥ **हलादेरीषादौ (१) टेर्लोपो वक्तव्यः*** हल ईषा हलीषा। लाङ्गल ईषा लाङ्गलीषा। मनस ईषा मनीषा। शक अन्धुः शकन्धुः। कर्क अन्धुः कर्कन्धुः। कुल अटा कुलटा। सीमन् अन्तः सीमन्तः। पतन् अञ्जलिः पतञ्जलिः। सार अङ्गः सारङ्गः। पशुपक्षिणोः। सारङ्गोऽन्यः ॥ १५ ॥

ओमाङावपि ॥ १६ ॥ अवर्णात्परौ ओमाङौ टिलोपनिमित्तौ स्तः। अद्य ओम् अद्योम्। शिव आ इहि शिवेहि ॥ १६ ॥

ओमि नित्यम् ॥ १७ ॥ ओमि परे नित्यं टेर्लोपो भवति। स्वर ओम् स्वरोम् ॥ १७ ॥

स्वोद्देश्यविशेषधर्मावच्छिन्नवृत्तिसामान्यधर्मावच्छिन्नोद्देश्यकशास्त्रस्य विशेषशास्त्रेण बाध इत्यर्थः। तदप्राप्तियोग्येऽचारितार्थ्यं बाधकत्वे बीजम्। एतन्मूलकमेव 'परनित्यान्तरङ्गापवादानामुत्तरोत्तरं बलीयः' इति पाणिनिशास्त्रे परिभाषा। तस्या एवानुवादिकेयं कारिका। (१) हलादि, ईषादि उभयत्रापि आदिपदेन तद्गणपठितानां ग्रहणम्, सोऽपि प्रयोगेण ज्ञायमान आकृतिगण एव। तेन केशवेशोऽस्यर्थविशेषे टिलोपो भवति, अन्यत्र सवर्ण-

---

उपादान है और 'सवर्णे दीर्घ' मे सवर्ण वर्णका विशेषरूपेण उपादान है। अथवा इस व्याकरण शास्त्रमें प्रायः यह भी देखा जाता है कि पर सूत्र से पूर्व सूत्रका बाध हो जाता है। एवं च उक्त स्थल मे यह सुतरां सिद्ध हो गया कि पूर्वपठित 'इयं स्वरे' को बाधकर 'सवर्णे दीर्घः' से दीर्घ ही होगा।

अ इ ए—अवर्णके परे इवर्ण रहता है तो दोनों मिलकर ए हो जाता है। **हलादेः**— हलादिके टी का लोप हो ईषादि के परे।

नोट—हलादि और ईषादि उभयत्र तद्गणपठित का ग्रहण हैं। तद्यथा—

हलीषा लाङ्गलीषा च मनीषाद्यो तथैव च।
शकन्धुरथ कर्कन्धुः सीमन्तः कुलटा तथा॥
पातञ्जलिश्च सारङ्ग एते प्रोक्ता हलादयः।

ओमाङौ—अवर्णसे पर ओम् आङ् दोनों टिलोप के निमित्ती है। अर्थात् ओम् आङ्के परे भी टि (अवर्ण) का लोप होता है। **ओमि**—ओम् परमें

उ ओ ॥ १८ ॥ अवर्ण उवर्णे परे सह ओ भवति। गङ्गा उदकम् गङ्गोदकम्। तीर्थ उदकं तीर्थोदकम् ॥ १८ ॥

ऋ अर् ॥ १९ ॥ अवर्ण ऋवर्णे परे सह अर् भवति। तव ऋद्धिः तवर्द्धिः।

क्वचिदार् ॥ २० ॥ अवर्ण ऋवर्णे परे सह समासे सति क्वचिदार् भवति। ऋण ऋणं ऋणार्णम्। **तृतीयासमासे च*** सुखेन ऋतः सुखार्तः। शीतार्तः। दुःखार्तः तृतीयेति किम्। परमर्तः ॥ २० ॥

लृ अल् ॥ २१ ॥ अवर्णः लृवर्णे परे सह अल् भवति। तव लृकारः तवल्कारः ॥ **ऋलृवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वक्तव्यम्*** ॥ होतृ लृकारः होतृकारः। होत्लृकारः। **रलयोः सावर्ण्यं ववक्तव्यम्*** ॥ परि अङ्कः पर्यङ्कः पल्यङ्कः ॥

दीर्घः अन्येषां सन्धिकार्याणां प्राप्तिसम्भवेऽपि सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलवान्' इत्यपि ज्ञेयम्। नात्र यथासंख्यम्। संख्या नियमाभावात्।

रहनेसे अवर्णका नित्य ही लोप हो जाता है। **उ ओ**—अवर्णके परे उवर्ण रहनेसे अ उ दोनों मिलके ओ हो जाता है। **ऋ अर्**—ऋवर्णके परे अवर्ण रहता है तो ऋ अ दोनों मिलके अर् हो जाता है। **क्वचिदार्**—अवर्णके परे ऋवर्ण रहनेसे अ ऋ दोनों मिलके कहीं पर आर् भी हो जाता है। **तृतीयासमासे**—तृतीया समासमें भी अवर्णसे पर ऋवर्ण रहनेसे दोनों मिलके आर् हो जाता है। **लृ अल्**—अवर्णसे पर लृवर्ण रहनेसे दोनों मिलके अल् हो जाता है। **ऋलृवर्ण**—ऋवर्ण और लृवर्णकी परस्पर सवर्णसंज्ञा होती है अर्थात् ऋकारसे लृकारका और लृकारसे ऋकारका ग्रहण होता है। **रलयोः**—ऋ–लृ वर्णस्थानिक र और ल की सवर्णसंज्ञा विकल्पसे होती है।

नोट—वेदमें तथा आलङ्कारिक लोग 'र ल' की, 'ड ल' की, 'स ष' की और 'ब व' को परस्पर सावर्ण्य कहते हैं। (इसीलिये लोकमें भी इन अक्षरोंका उच्चारण बहुधा, वर्णव्यत्यासेन होता है) तद्यथा :—

रलयोर्डलयोश्चैव सषयोर्वबयोस्तथा।
वदन्त्येषां च सावर्ण्यमलङ्कारविदो जनाः ॥

ए ऐ ऐ ॥ २२ ॥ अवर्ण एकारे ऐकारे च परे सह ऐकारो भवति । तव एषा तवैषा । तव ऐश्वर्यं तवैश्वर्यम् ॥ २२ ॥

ओ औ औ ॥२३॥ अवर्ण ओकारे औकारे च परे सह औकारो भवति। तव ओदनम् तवौदनम् । तव औन्नत्यम् तवौन्नत्यम् ॥ २३ ॥

ओष्ठोत्वोर्वौ समासे ॥ २४ ॥ अवर्णस्य ओष्ठोत्वोः परयोर्वा सह औत्व भवति समासे सति। बिम्ब ओष्ठ, बिम्बोष्ठः बिम्बौष्ठः । स्थूल ओतुः स्थूलोतुः स्थूलौतुः । अविहितलक्षणप्रयोगो गवादौ द्रष्टव्य. ॥ २४ ॥

इति स्वरसंधिः ॥

— :*:*: —

अथ प्रकृतिभावप्रकरणम्

नामी ॥ १ ॥ अदसः अमीशब्दः सन्धि न प्राप्नोति । अमी आदित्याः। अमी उष्ट्राः । अमी एडकाः । अदस इति किम् । अमी रोगस्तद्वान् । अमी अत्र अम्यत्र ॥

य्वे द्वित्वे ॥ २ ॥ ई च ऊ च ए च य्वे। ईकारान्तः ऊकारान्तः एकारान्तश्च शब्दो द्वित्वे वर्तमानः सन्धि न प्राप्नोति कणीवादिवर्जम् । अग्ना

ए ऐ ऐ—अवर्णसे पर एकार वा ऐकार हो तो पूर्व पर मिलके ऐकार हो। **ओ औ**—अवर्णसे पर ओकार वा औकार हो तो पूर्व पर मिलके औकार होता है। **ओष्ठो**—अवर्णसे पर ओष्ठ वा ओतु शब्द सम्बन्धी ओकार हो तो पूर्व पर मिलके विकल्पसे ओकार होता है।

नोट—विकल्प पक्षमे 'ओ औ औ' से औकार हो जाता है। समास नहीं कहनेसे। 'तव+ओष्ठः=तवोष्ठः' यहाँ भी पक्षमे 'तवौष्ठः' ऐसा अनिष्ट प्रयोग भी हो जायगा।

इति स्वरसन्धिप्रकरणम्

—: *:* :—

नामी—अदस् शब्दसम्बन्धी अमी शब्दकी सन्धि नहीं होती। **य्वे द्वित्वे**—द्विवचनान्त ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त शब्दोंकी सन्धि

अत्र । पटू अत्र । माले आनय । मणीवादीति किम् । मणी इव (१) मणीव । रोदसी इव रोदसीव । दम्पती इव दम्पतीव । जम्पती इव जम्पतीव ॥ २ ॥

औ निपातः ॥ ३ ॥ आकार ओकारो निपात एकस्वरश्च सन्धि न प्राप्नोति । आ एवं किल मन्यसे नो अत्र स्थातव्यम् । उ उत्तिष्ठ अपेहि । इ इन्द्रं पश्य । अ अपेहि । आग्रहणादाङो न निषेधः । तथा चोक्तम्—

'औत्तमैरीक्ष्यसे न त्वाममृतादैन्द्रतोऽखिलैः ।
आ एवं सर्ववेदार्थं आ एवं सद्वचो हरेः ॥ १ ॥
ईषदर्थे क्रियायोगे मर्यादाभिविधौ च यः ।
एतमातं ङितं विद्याद् वाक्यस्मरणयोरङित् ॥ २ ॥'

प्लुतः ॥ ४ ॥ प्लुतश्च सन्धि न प्राप्नोति । देवदत्त ३ एहि । (२) हे ३ राम राम हे ३ ॥ ४ ॥

---

(१) **मणीवादिवर्जमिति । अत्र केचित् 'मणीवोष्ट्रस्य लम्बेते प्रियौ वत्सरौ ममेति' भारतप्रयोगे समर्थनार्थमिदं वचनं न कार्यम्, कोशे इवार्थक 'व' शब्दस्य दर्शनात् । 'मणीव' इत्यत्र वशब्द एव । तथा —'वं प्रचेतसि जानीया-दिवार्थे च तदव्ययम्' इति मेदिनी । 'ववा यथा तथैववं साम्ये' इत्यमरः । 'कादम्बखण्डितदलानि व पङ्कजानि' इत्यादिलौकिकप्रयोगा अनयैव रीत्या उपपादनीयाः ।**

(२) **हे ३ राम इति । अत्र केचित् यत्र वाक्ये 'हे हैं' इत्यादीनां प्रयोगस्तत्र**

नहीं होती मणिवादि शब्दको छोड़ कर । **औ निपातः**—आकार और ओकार निपातकी अथवा एक स्वर वर्णकी अर्थात् 'अ' से औ पर्यन्त निपात स्वर की सन्धि नहीं हो ।

नोट—इस सूत्रमें आकारसे आङ्वर्जित 'आ' का ग्रहण होता है । तथा हि हरिकारिकाः—

**आकारन्तु निपातो यो ङिदङिद्भेदतो द्विधा ।
तत्रापि च ङिदाकारः सन्धि प्राप्नोति न त्वङित् ॥**

पुनश्च—**अहो आहो उताहो च नो हो हंहो अथो इमे ।
मियो युक्ताश्च ओदन्ता निपाता अष्टधा मताः ॥ इति ।**

प्लुतः—प्लुतसंज्ञक वर्णकी सन्धि नहीं हो ।

दूरादाह्वाने च टेः प्लुतः ॥ ५ ॥ दूरादाह्वाने गाने रोदने (१) विचारे च टेः प्लुतो भवति ॥ ५ ॥

इति प्रकृतिभावः ॥

—०:०—

अथ व्यञ्जनसन्धिः

चपा अबे जबाः ॥ १ ॥ पदान्ते वर्तमानाश्चपा जबा भवन्त्यबे परे। षट् अत्र षडत्र। वाक् यथा वाग्यथा ॥ १ ॥

(२) **ञमे ञमा वा ॥ २ ॥** पदान्ते वर्तमानश्चपा ञमे परे ञमा वा भवन्ति। वाक् मात्रं वाग्मात्रम् वाङ्मात्रम्। षट् नम षड्नम षण्मम ॥ २ ॥

(३) **चपाच्छः शः ॥ ३ ॥** चपादुत्तरस्य शकारस्य छो वा भवति। वाक्शूरः वाक्छूरः ॥ ३ ॥

हे है इत्यादीनामेव प्लुतत्वम् (१) विचारेति। 'का एषाग्रस्तुलाङ्गी प्रचलित-नयना हंसलीलाव्रजन्ती' इत्यादिश्लोके का एषेत्यादौ विचारेऽर्थे प्लुतत्वान्न स्वरसन्धिः। अत्र केचित्। इति शब्दे परे प्लुतोऽपि सन्धिं प्राप्नोति। यथा—हा तात इति, तातेति वा। एतदर्थमेव 'प्लुतोऽनितौ' इति सूत्रं सूचयन्ति। अनयैव रीत्या 'पुत्रेति' प्रयोगो व्याख्येयः। तेन तच्छ्लोकस्थटीकायां श्रीधराचार्यैर्यदुक्तं तच्चिन्त्यमेव। (२) ञमे ञमा वा। 'प्रत्यये ञमे नित्य' मित्यपि कथयन्ति तेन वाङ्मात्रम् चिन्मात्रमित्यादौ नित्यमेव ञमा भवन्ति। (३) चपाच्छः श इति। अत्र 'छत्वममिति वाच्यम्' इति पठनीयमेव तेन 'वाक्श्चोतति' इत्यत्र छत्वं न। केचित्तु छः श इति उद्देश्यविधेयानां वैपरीत्ये-नोच्चारणात् क्वचित्प्रयोगे छत्वं नेष्टमित्याशयं वर्णयित्वा वाक्श्चोततीत्यत्र छत्वाभावं समर्थयन्ति।

दूरादा—दूरसे सम्बोधनमें गानमे, रुदनमे और विचार मे (वाक्यावयव) टिकी प्लुतसंज्ञा होती है।

इति प्रकृतिभावप्रकरणम्।

—: ** :—

चपा—पदान्तमे वर्तमान चप प्रत्याहार जब होते है, अब प्रत्याहारके परे। **ञमे**—पदान्तमे वर्तमान चप प्रत्याहार ञमके परे ञम विकल्पसे होते है। **चपाच्छः**—चपसे उत्तर शकारको छकार हो, अब प्रत्याहारके परे

हो झभाः ॥ ४ ॥ चपादुत्तरस्य हकारस्य झभा वा भवन्ति यद्वर्गगश्चपस्तद्वर्गगश्चतुर्थो भवति । तत् हविः तद्धविः । वाक् हरिः वाग्घरिः वाग्हरिः ॥ ४ ॥

स्तोः श्चुभिः श्चुः ॥ ५ ॥ स्तोः सकारस्य तवर्गस्य च शकारेण चवर्गेण च योगे शकारचवर्गौ (१) यथासंख्येन भवतः । सकारस्य शकारः । तवर्गस्य चवर्गः । कस् चरति कश्चरति । कस् शूरः कश्शूरः । तत् चित्रं तच्चित्रम् । तत् शास्त्रं तच्छास्त्रम् ॥

न शात् ॥ ६ ॥ शकारादुत्तरस्य तवर्गस्य चुत्वं न भवति । विश् न विश्नः । प्रश् नः प्रश्नः ॥ ६ ॥

(२) ष्टुभिः ष्टुः स्तोः ॥ ७ ॥ सकारतवर्गयोः षकारटवर्गाभ्यां योगे ष्टुर्भवति । सकारस्य षकारः । तवर्गस्य टवर्गः । कस् षण्ठः कष्षण्ठः । कस् टीकते कष्टीकते । तत् टीकते तट्टीकते ॥ ७ ॥

तोर्लि लः ॥ ८ ॥ तवर्गस्य लकारे परे लकारो भवति । तत् लुनाति तल्लुनाति । भवान् लिखति भवाँल्लिखति । अन्तस्था द्विप्रभेदा रेफवर्जिता यवलाः सानुनासिका निरनुनासिकाश्च । तत्र सानुनासिक एव नकारस्य स्थाने लकारो भवति ।

---

(१) यथासंख्येनेति । अत्र स्थान्यादेशानामेव यथासंख्यम्, न तु निमित्तकार्यिणोः, इदं च 'न शात्' इति सूत्राज्ज्ञायते । अन्यथा 'विश्न' इत्यादौ श्चुत्वाप्राप्त्या निषेधो व्यर्थः स्यात् । (२) ष्टुभिः ष्टुः स्तोः । अत्रापि पूर्ववदेव-

---

विकल्पसे । **हो झभाः**—चपसे उत्तर हकारको झभ हो, विकल्पसे ।

नोट—जिस वर्गका सम्बन्धी चप हकारसे पूर्व हो, उस वर्गका चतुर्थ अक्षर हकारके स्थानमें होता है । तदुक्तम्—

यद्वर्गस्य चपः पूर्वं हकारात्किल दृश्यते ।
हस्य स्थाने भवेद्वर्णस्तद्वर्णस्य चतुर्थकः ॥

स्तोः श्चुः—शकार, चवर्गके योगमें सकारको शकार और तवर्गको चवर्ग हो । **न शात्**—शकारसे उत्तर तवर्गको चवर्ग नहीं हो । **ष्टुभिः**—षकार, टवर्गके योगमें सकारको षकार और तवर्गको टवर्ग हो । **तोर्लि**—तवर्गको

न षि ॥९॥ षकारे परे तवर्गस्य ष्टुत्वं न भवति। भवान् षष्ठः। भवान्षष्ठः।

टोरन्त्यात् ॥ ॥ १० ॥ पदान्ते वर्तमानाट्टवर्गात्परस्य स्तोः ष्टुर्न भवति (१)। षट् नरः षण्नरः। षट् सीदन्ति षट्सीदन्ति ॥ १० ॥

(२) **नः सक् छते ॥ ११ ॥** नान्तस्य पदस्य छते परे सगागमो भवति ॥ **टित्किताबाद्यन्तौवक्तव्यौ*।** टित्वादादौ कित्वादन्ते। राजन् चित्रं राजंश्चित्रम्। भवान् तनोति भवांस्तनोति ॥ ११ ॥

शे चक् वा ॥ १२ ॥ नान्तस्य पदस्य शे परे वा चगागमो भवति। भवान् शूरः भवाञ्शूरः भवाञ्च्शूरः भवाञ्च्छूरः ॥ १२ ॥

ङ्ण्नो ह्रस्वाद् द्विः स्वरे ॥ १३ ॥ ङकारणकारनकारा ह्रस्वादुत्तरा द्विर्भवन्ति स्वरे परे पदान्ते। प्रत्यङ् इदं प्रत्यङ्ङिदम्। सुगण् इह सुगण्णिह। राजन् इह राजन्निह ॥ १३ ॥

छः ॥ १४ ॥ ह्रस्वादुत्तरश्छकारो द्विर्भवति। तव छ् छत्रमिति स्थिते ॥ १४ ॥

खसे चपा झसानाम् ॥१५॥ झसाना खसे परे चपा भवन्ति। तव छ् छत्रं तवच्छत्रम्। **क्वचिद्दीर्घादपि वक्तव्यः*।** ह्रीछः ह्रीच्छः। म्लेछः म्लेच्छः ॥

देव ज्ञेयम् 'न षि' इति सूत्रलिङ्गात् (१) ष्टुर्न भवतीति। अत्र 'अनाम्नवतिनगरीणामिति वाच्यम्' इति वचनं कार्यम्। तेन षट् नाम्, षट् नवति, षट् नगर्यः इति स्थिते षण्णाम्, षण्णवति, षण्णगर्यः, इति प्रयोगे ष्टुत्वनिषेधाभावात ष्टुत्वं णत्वं च सिद्ध्यति। (२) सक् इति। ककार आगमपरिचायकः। अकार उच्चारणार्थः। ककाराकारयोर्लोपः। सकारमात्रस्य

लकारके परे लकार हो। **न षि**—षकारके परे टवर्ग को टवर्ग नहीं हो। **टोरन्त्यात्**—पदान्तमे वर्तमान टवर्गसे पर सकारको षकार और तवर्गको टवर्ग नही हो। **नः सक्**—नान्त पदको सकागम हो छत प्रत्याहारके परे। **टित्किता**—टित् और कित् दोनों आगम क्रमसे आदि अन्तमें होते हैं अर्थात् टित् आदिमें और कित् अन्तमे होते है। **शे चक्**—नान्त पदको चकागम हो, शकारके परे, विकल्पसे। **ङ्ण्नो**—ह्रस्वसे पर पदान्त ङकार, णकार और नकारको द्वित्व हो स्वर वर्णके परे। **छः**—ह्रस्वसे पर छकारको द्वित्व हो। **खसे**—झसको चप हो खसके परे। **क्वचित्**—कहीं दीर्घसे पर भी

मोऽनुस्वारः ॥ १६ ॥ मकारस्यानुस्वारो भवति पदान्ते । तम् हसति तं हसति । पटुम् वृथा पटुं वृथा ॥ १६ ॥

नश्चापदान्ते झसे ॥ १७ ॥ नकारस्य मकारस्य चापदान्ते वर्तमानस्यानुस्वारो भवति झसे परे । यशान् सि यशांसि । पुम् भ्यां पुंभ्याम् ॥ १७ ॥

यमा यपेऽस्य वा ॥ १८ ॥ अनुस्वारस्य यमा वा भवन्ति यपे परे । अस्य यपस्य सवर्णः । तं करोति तङ्करोति । तं तनोति तन्तनोति । सं यन्ता सँय्यन्ता (१) ॥ १८ ॥

यवलपरे यवला वा ॥१९॥ अनुस्वारस्य यवलपरे यवला वा भवन्ति । संवत्सरः सँव्वत्सरः । यं लोकं यँल्लोकम् । **ङणोः कक् टक् वा शसे*** (२) ङकारणकारयोः शषसे परे कक्टकावागमौ वा स्तः । प्राङ् षष्ठः, प्राङ्क्षष्ठः, सुगण् षष्ठः, सुगण्ट्षष्ठः ॥ १९ ॥

(३) **ँ छन्दसि ॥२०॥** छन्दस्यानुवारो ँकारमापद्यते शषसहरेफेषु परतः । हंसः हँसः ॥ २० ॥ इति व्यञ्जनसंधिः ।

विवक्षा । (१) संयन्तेति । द्वौ प्रभेदौ येषां ते द्विप्रभेदा रेफवर्जिताः ँ अन्तस्था यवलाः सानुनासिका निरनुनासिकाश्च । तेन सँय्यन्ता सँव्वत्सरः यँल्लोकम्, इत्यत्रानुनासिका यवला भवन्ति । (२) कक्टकाविति । ककारटकारौ आगमपरिचायकौ उभयत्राकार उच्चारणार्थः । (३) छन्दसीति । छन्दो वेदः । इदं वचनं प्राधान्येन यजुर्वेदविषयकमिति केचित् । ऋग्वेदे तु सर्वत्रानुस्वारो दृश्यते । 'एवेदं सर्वं यद् भूतम्' । इत्यत्रानुस्वारः । वस्तुतस्तु 'छन्दसि दृष्टानुविधिः' इत्येव सर्वैरादरणीयम् । तेन ऋग्वेदोक्तसौरसूक्ते 'हंसः शुचिषद्वसु' इत्येव । यजुर्वेदस्थत्रिसुपर्णे 'हँसः शुचिषत्' इत्येव पाठः । अत्र तत्तद्वेदोक्तप्रातिशाख्यमेव प्रमाणम् । इति व्यञ्जनसन्धिः

छकारको द्वित्व होता है । **मोऽनुस्वारः**—पदान्त मकारके स्थानमें अनुस्वार हो । **नश्चाप**—अपदान्त नकार और मकारको अनुस्वार हो, झसके परे । **यमा यपे**—अपदान्त अनुस्वारके स्थानमें यम हो, यप प्रत्याहारके परे विकल्पसे । **यवलपरे**—' य व ल'के पर अनुस्वारके स्थानमे सानुनासिक यँ वँ लँ आदेश हो विकल्पसे । **ङणोः**—ङकार, णकारको कक् टक् आगम हो, शस प्रत्याहारके परे विकल्पसे । **ँ छन्दसि**—वेदमे श, ष, स, ह और रकारके परे अनुस्वारके स्थानमें ँ होता है ।

इति व्यञ्जनसन्धिः

अथ विसर्गसन्धिप्रकरणम्

विसर्जनीयस्य सः ॥ १ ॥ विसर्जनीयस्य सकारो भवति खसे परे । कः तनोति कस्तनोति ॥ १ ॥

(१) शषसे वा ॥ २ ॥ विसर्जनीयस्य शषसे परे वा सकारो भवति । कः शेते कश्शेते । कः षण्ढः कष्षण्ढः । कः साधुः कस्साधुः ॥ २ ॥

कुप्वोः ≍क≍पौ वा ॥ ३ ॥ विसर्जनीयस्य कवर्गसम्बन्धिनि खसे परे ≍क≍पौ वा भवतः । कपावुच्चारणार्थौ । कः करोति क≍करोति । कः पचति क≍पचति । कः पठति क≍पठति । वाचस्पत्यादयः संज्ञाशब्दा निपातनात्साधवः । यल्लक्षणेनानुत्पन्नं तत्सर्वं निपातनात्सिद्धम् ॥ **तद्बृहतोः करपत्योश्चोरदेवतयोः सुट् तलोपश्च*** (२) तत् कर. तस्करः । बृहत् पतिः बृहस्पतिः । वाचः पतिः वाचस्पतिः ॥ ३ ॥

अह्नो रोऽरात्रिषु ॥ ४ ॥ अह्नो विसर्जनीयस्य पदान्ते रो भवति रात्र्यादिगणवर्जितेषु परतः । अहः पतिः अहर्पतिः । अहः गणः अहर्गणः । अरात्रिष्विति विशेषणात् । अहः रात्रम् अहोरात्रम् । अहः रूपम् । अहोरूपम् । अहः रथन्तरम् अहोरथन्तरम् ॥ ४ ॥

---

(१) शषसे वा । **अत्र 'शषसपरे छपे' इति वचनान्तरं कार्यमिति केचित् । तेन कः त्सरुः घनाघनः क्षोभणः इत्यत्र नित्यविसर्गः । (छपपरे शषसे वा लोपो वक्तव्यः) तेन राम स्याता हरि स्फुरति' इत्यत्र वैकल्पिको विसर्गलोपश्च । (२) तलोपश्चेति । चकारात्, तत्सदृशानां ग्रहणम् । तेन हरिश्चन्द्रः 'मस्करमस्करिणौ वेणुपरि ब्राजकयोः' कांस्कान्, कस्कः, अश्वत्थ,**

विसर्जनी—विसर्गके स्थानमे सकार हो खस प्रत्याहारके परे । **शषसे**—श, ष सके परे विसर्गके स्थानमे सकार हो विकल्पसे । **कुप्वोः**—कवर्ग, पवर्गके संबन्धी विसर्गके स्थानमे ≍क≍प आदेश हो खसके परे विकल्पसे । **तद्बृहतो**—कर और पति शब्दके परे चोर तथा देवतावाची तत् और बृहत् शब्दको सुट्का आगम और तकारका लोप होता है । **अह्नो**—पदान्तमें वर्तमान अहन् शब्दके विसर्गका रेफ आदेश हो रात्र्यादि (रात्रि, रूप,

(१) **अतोऽत्युः** ॥ ५ ॥ अकारात्परस्य विसर्जनीयस्य उकारो भवति अति परे। कः अर्थः कोऽर्थः ॥ ५ ॥

हबे ॥ ६ ॥ अकारात्परस्य विसर्जनीयस्य उकारो भवति हबे परे। कः गतः को गतः। देवः याति देवो याति। मनः रथः मनोरथः ॥ ६ ॥

आदबे लोपश् ॥ ७ ॥ (२) अवर्णात्परस्य लोपश् भवति अबे परे। देवाः अत्र देवा अत्र। वाताः वान्ति वाता वान्ति ॥ ७ ॥

स्वरे यत्वं वा ॥ ८ ॥ अवर्णात्परस्य विसर्जनीयस्य स्वरे परे यत्वं वा भवति। देवा अत्र देवायत्र ॥ ८ ॥

(३) **भोसः** ॥ ९ ॥ भोस् भगोस् इत्येतस्मात्परस्य विसर्जनीयस्य लोपश् भवत्यबे परे। भोः एहि भो एहि। भगोः नमस्ते भगो नमस्ते। अघोः याहि अघो याहि ॥ ९ ॥

नामिनो रः ॥ १० ॥ (४) नामिनः परस्य विसर्जनीयस्य रेफो भवति अबे परे। अग्निः अत्र अग्निरत्र। पटुः यजते पटुर्यजते ॥ १० ॥

कपित्थ, दधित्थ इत्यादि लोकप्रसिद्धरूपाणां निपातनात् सङ्ग्रहः। (१) अतोऽत्युः। उभयत्रापि तपरकरणं तावन्मात्रग्रहणार्थम्। (२) अवर्णात् परस्येति अवर्ण इत्युक्ते ह्रस्वदीर्घप्लुतविशिष्टस्य ग्रहणम्। 'अतोऽत्यु'रिति पूर्वसूत्रेण अकारविषये व्यवस्थापितत्वात्। 'आत' इति आकारस्वरूपकथनं वा ज्ञेयम्। तेन, आकारात् परस्य विसर्जनीयस्य लोपश् भवति अबे परे इति फलितम्। (३) भोसः। अत्र भोस-पदेन प्रत्याहारो गृह्यते तेन त्रयाणां ग्रहणम्। (४) नामिनः। अवर्णवर्जाः स्वराः।

-रथन्तर) शब्द भिन्नके परे। **अतोऽत्युः**—अकारसे पर विसर्गको उ हो अकारके परे। **हबे**—अवर्णसे पर विसर्गको उ हो हब प्रत्याहारके परे। **आदबे**—अवर्णसे पर विसर्गका लोपश् हो अब प्रत्याहारके परे। **स्वरे**—अवर्णसे पर विसर्गका यत्व हो स्वर वर्णके परे विकल्पसे। **भोसः**—भोस्, भगोस्, अघोस् सम्बन्धी विसर्गका लोपश् हो अब् प्रत्याहारके परे। **नामिनो**—नामिन (इ उ ऋ लृ) से पर विसर्गके स्थानमे र हो अब प्रत्याहारके परे।

उषसो रो बुधे ॥ ११ ॥ उषसो विसर्जनीयस्य रेफो भवति बुधे परे। उषः बुधः उषर्बुधः ॥ ११ ॥

रेफप्रकृतिकस्य खपे वा ॥१२॥ रेफप्रकृतिकस्य विसर्जनीयस्य खपे परे वा (१) रेफो भवति। गीः पतिः गीष्पतिः गीर्पतिः। धूः पतिः धूष्पतिः धूर्पतिः ॥

रः ॥ १३ ॥ रेफसम्बन्धिनो विसर्जनीयस्य रेफो भवत्यबे परे। प्रातः अत्र प्रातरत्र। अन्तः गतः अन्तर्गतः ॥ १३ ॥

रि लोपो दीर्घश्च ॥१४॥ रेफस्य रेफे परे लोपो भवति पूर्वस्य च (२)दीर्घः। पुनः रमते पुना रमते। शुक्तिः रूप्यात्मना भाति। शुक्ती रूप्यात्मना भाति। शंभुः राजते शंभू राजते ॥ १४ ॥

सैषाद्हसे ॥ १५ ॥ सशब्दादेषशब्दाच्च परस्य विसर्जनीयस्य लोपश् भवति हसे परे। सः चरति स चरति। एषः हसति एष हसति। सौषादिति संहिता।

'सैष दाशरथी रामः सैष राजा युधिष्ठिरः।
सैष कर्णो महात्यागी सैष भीमो महाबलः ॥'

इत्यादौ पादपूरणे सन्ध्यर्था ज्ञेयाः।

'यदुक्तं लौकिकायेह तद्वेदे बहुलं भवेत्।
सेमां भूम्याददे सैषामित्यादीनामदुष्टता ॥'

---

(१) वा रेफः। तेन—'विसर्जनीयस्य सः' 'कुप्वोः⌒क⌒पौ वा' अनयोः सङ्ग्रहः। षत्वमपि ज्ञेयम्। (२) पूर्वस्य च दीर्घः। अत्र दीर्घग्रहणात् व्यञ्जनानां ह्रस्वदीर्घप्लुतधर्माणामभावात् पारिशेष्यन्यायेन स्वराणां ग्रहणम्। तेष्वपि अ, इ, उ इति त्रयाणामेव ग्रहणम् नान्येषामसम्भवात्। प्रयोगाभावाच्च।

उषसो—उषस् शब्दके विसर्गका रेफ हो बुध शब्दके परे। **रेफप्रकृति**—रेफप्रकृति (रजात) विसर्गके स्थानमें रेफ हो खप प्रत्याहारके परे विकल्पसे। **रः**—रेफ सम्बन्धी (रजात) विसर्गके स्थानमें रकार हो अब प्रत्याहारके परे। **रि लोपो**—रेफके परे रेफका लोप होता है और पूर्वका दीर्घ होता है। **सैषाद्हसे**—स शब्दसे और एष शब्दसे पर यिसर्जनीयका लोप हो हस प्रत्याहारके परे।

क्वचिन्नामिनो लोपश् ॥ १६ ॥ नामिनः परस्य विसर्जनीयस्य क्वचिल्लोपश् भवत्यबे परे । भूमिः आददे मूम्याददे ॥ १६ ॥

'क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव ।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥
वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ॥
वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः ॥
षोडशादौ विकारः स्याद्वर्णनाशः पृषोदरे ॥
वर्णनाशविकाराभ्यां धातोरतिशयेन यः ।
योगः स उच्यते प्राज्ञैर्मयूरभ्रमरादिषु ॥'

इति विसर्गसन्धिः ।

—: *:* :—

अथ स्वरान्ताः पुँल्लिङ्गाः

अथ (१) विभक्तिर्विभाव्यते । सा द्विधा स्यादि (२)स्त्यादिश्च ।

विभक्त्यन्तं पदम् ॥ १ ॥ तत्र स्यादिर्विभक्तिर्नाम्नो योज्यते ॥ १ ॥

---

(१) विभक्तिर्विभाव्यते । विभज्यन्ते पृथक् क्रियन्ते कर्तृकर्मादयो यया सा विभक्तिः, कथ्यते । (२) स्यादिस्त्यादिश्चेति । सि–आदिः प्रथमा यस्याः सा ।

क्वचिन्नामिनो—किसी प्रयोगमें नामसे पर विसर्गका लोप होता है, अबके परे ।

इति विसर्गसन्धिः

—: *:* :—

अथ विभक्तिर्विभाव्यते—पञ्चसन्धिके अनन्तर विभक्ति कहते है । विभक्ति दो प्रकारकी होती है—एक स्यादि (सि औ जस् आदि) और दूसरी त्यादि (तिप् तस् अन्ति, आदि—तिङन्त देखो) ।

एक ही पद्यमें सभी विभक्तियोंका प्रयोग देखो :—

वृक्षस्तिष्ठति कानने कुसुमिते, वृक्षं लताः संश्रिताः ।
वृक्षेणाभिहिता गजा निपतिता, वृक्षाय देयं जलम् ॥
वृक्षादानय मञ्जरीं कुसुमितां, वृक्षस्य शाखोन्नता ।
वृक्षे नीडमिदं कृतं शकुनिना, हे वृक्ष ! किं पश्यसि ॥

(१) **अविभक्ति नाम** ॥ २ ॥ विभक्तिरहितं धातुवर्जितं चार्थवच्छब्दरूपं नामोच्यते । कृत्तद्धितसमासाश्च प्रातिपदिकसंज्ञा इति केचित् ॥ २ ॥

तस्मात् सि औ जस्, अम् औ शस्, टा भ्याम् भिस्, ङे भ्याम् भ्यस्, ङसि भ्याम् भ्यस्, ङस् ओस् आम्, ङि ओस् सुप् ॥ ३ ॥ तस्मान्नाम्नः पराः स्यादयः सप्त विभक्तयो भवन्ति । तत्राप्यर्थमात्रैकत्वविवक्षायां प्रथमैकवचने देव सि इति स्थिते इकार उच्चारणार्थः । सेरिति विशेषणार्थश्च ॥ ३ ॥

स्रोर्विसर्गः ॥४॥ सकाररेफयोर्विसर्जनीयादेशो भवति अधातो रसे पदान्ते च । देवः । द्वित्वविवक्षायां 'ओ औ औ' सूत्रेण देवौ । बहुत्वविवक्षायां प्रथमाबहुवचने जस् । जसो जकारस्येत्संज्ञाया तस्य लोपः । प्रयोजनं च 'जसी' इति विशेषणार्थम् । देव अस् इति स्थिते दीर्घविसर्गौ । देवाः ॥ **अकाराज्जसोऽसुक् क्वचिद्वक्तव्यश्छन्दसि*** । कित्वादन्ते । देवासः ब्राह्मणासः॥४॥

द्वितीयैकवचने अम् इति स्थिते ।

अम्शसोरस्य ॥ ५ ॥ समानादुत्तरयोः अम्शसोरकारस्य लोपो भवत्यधातोः । देवम् । देवौ । बहुवचने देव शस् इति स्थिते शकारः 'शसि' इति कार्यार्थः ॥ ५ ॥

सो नः पुंसः ॥६॥ पुलिङ्गात्समानादुत्तरस्य शसः सकारस्य नकारादेशो भवति ॥ ६ ॥

ति (तिप्) आदिर्यस्याः सा, इत्यादिका । (१) अविभक्ति नाम । नमन्ति तानि नामानीति निरुक्तम् । क्रियायामिति शेषः । 'शब्दरूपं नाम' इत्युक्ते पदस्यापि नामसंज्ञा स्यात् तन्निवारणार्थमविभक्ति, इति । अविभक्ति शब्दरूपं नाम इत्युक्ते धातावपि लक्षणसमन्वयादतिव्याप्तिस्तन्निवारणार्थमाह—धातुवर्जितमिति । भेदाभेदरूपानुकरणे कथंचिदर्थवत्वमादाय नामसंज्ञा ।

विभक्त्यन्तं—विभक्त्यन्त पद कहलाता है । **अविभक्ति**—विभक्तिसे रहित धातुभिन्न अर्थवत् जो शब्द वह नाम कहा जाता है । **स्रोर्वि**—धातुभिन्न पदान्त सकार और रेफको विसर्ग हो । अकारात्—वेदमें अकारसे पर जस्के स्थानमें असुक्का आगम हो । **अम्शसोः**—समानसे पर अम् और शस् सम्बन्धी अकारका लोप हो । **सो नः**—समानसे पर शस् सम्बन्धी सकारको

शसि ॥ ७ ॥ शसि परे पूर्वस्य स्वरस्य दीर्घो भवति । यदादेशस्तद्वद्भवति न तु वर्णमात्रविधौ । देवान् । तृतीयैकवचने देव टा इति स्थिते । टकारानुबन्धः 'टेन' इति विशेषणार्थः ॥ ७ ॥

टेन ॥ ८ ॥ अकारात्परष्टा इनो भवति । देवेन ॥ ८ ॥

आद्भिः ॥ ९ ॥ (१) अकारस्य स्थाने अकारादेशो भवति भकारे परे । देवाभ्याम् ॥ ९ ॥ देव भिस् इति स्थिते—

भ्यः ॥ १० ॥ (२) अकारात्परस्य भिसो भकारस्याकारादेशो भवति । 'अ इ ए' । देव एश् इति स्थिते 'ए ऐ ऐ' वृद्धिसविर्जनीयौ । देवैः **अकारस्य भिसि छन्दस्येकारो वा वक्तव्यः*** देवेभिः ॥ १० ॥ चतुर्थ्येकवचने देव ङे इति स्थिते, ङकारो ङित्कार्यार्थः सर्वत्र ।

ङेरक् ॥ ११ ॥ अकारात्परस्य ङे इत्येतस्यागागमो भवति । कित्त्वादन्ते । ए अय् । दीर्घः । देवाय (३) देवाभ्याम् । पूर्ववत् ॥ ११ ॥ चतुर्थीबहुवचने देव भ्यस् इति स्थिते ।

---

(१) 'अम्शसोरस्य' इति सूत्रात् 'अस्य' इति षठ्यन्तं पदमनुवर्तते । अत आह—'आकारस्य स्थाने' इति । 'आत्' इति स्वरूपकथनम् । न तु पञ्चमी 'तः परो यस्मात्' 'स चोच्चार्यमाणः समकालस्यैव बोधको भवति' इति नियमात् (२) पूर्वसूत्राद् 'आत्' इति पदमनुवर्त्य पञ्चम्यन्तस्याऽऽत्पदस्य व्याख्यानमाह–अकारात् परस्येति । 'पञ्चमीनिर्देशेन विधीयमानं कार्यं वर्णान्तरेणाव्यवहितस्य पूर्वस्य बोध्यम्' इति नियमात् 'भस्य' स्थाने अकारः । 'अत्र भिसः' इत्यवयवार्थबोधिका षष्ठी । (३) देवायेति । अत्र देव ए अ इति स्थिते अयादेशो 'सवर्णे दीर्घः सहे'ति सूत्रेण दीर्घः ।

नकार आदेश हो । **शसि**–शस् विभक्तिके परे पूर्व का दीर्घ हो । **टेन**—अकारसे पर टा को इन् आदेश हो । **आद्भिः**—अकारके स्थानमें आकार आदेश हो भकारके परे । **भ्यः**—आकारसे पर भिस्के भकार को अकार आदेश हो । **अकार**–वेदमे अकारसे पर भिस्के भकारको विकल्पसे एकार आदेश हो ऐसा कहना चाहिये । **ङेरक्**—अकारसे पर ङे विभक्तिके

ए स्भि बहुत्वे ॥ १२ ॥ अकारस्य एत्वं भवति भकारे भकारे च परे बहुत्वे सति । देवेभ्यः ॥ १२ ॥ पञ्चम्येकवचने देव अस् इति स्थिते—

ङसिरत् ॥ १३ ॥ अकारात्परो ङसिरद्भवति । इकारः प्रत्ययभेदज्ञापनार्थः । दीर्घः । देवात् । देवाभ्याम् । देवेभ्य' ॥ १३ ॥ षष्ठ्येकवचने देव ङस् इति स्थिते—

ङस् स्य ॥ १४ ॥ आकरात्परो ङस् स्य भवति । देवस्य ॥ १४ ॥ षष्ठिद्विवचने देव ओस् इति स्थिते—

ओसि ॥ १५ ॥ अकारस्य ओसि परे एत्वं भवति । 'ए अय्' । देवयोः ॥ १५ ॥

नुडामः ॥ १६ ॥ (१) समानात्परस्यामो नुडागमो भवति । टित्वादादौ । उकारः उच्चारणार्थः ॥ १६ ॥

नामि ॥ १७ ॥ (२) नामि परे पूर्वस्य दीर्घो भवति । देवानाम् ॥१७॥

सप्तम्येकवचने देव ङि इति स्थिते । 'अ इ ए' । देवे । देवयोः पूर्ववत् । सप्तमीबहुवचने देवे सुप् इति स्थिते पकारस्येत्संज्ञायां लोपः । 'ए स्मि बहुत्वे' इत्येत्वे—

क्विलात् षः सः कृतस्य ॥ १८ ॥ कवर्गादिलाच्च प्रत्याहाराद्धुत्तरस्य केनचित् सूत्रेण कृतस्य सकारस्य षकारादेशो भवति । देवेषु । (३) अन्ते स्थितस्य तु न भवति ॥ १८ ॥

---

(१) 'अ इ उ ऋ ऌ समानाः' ह्रस्वाः समानसंज्ञकाः वर्णाः यस्यान्ते तादृशशब्दसमुदायादित्यर्थः । (२) नुट् सहितः, आम् नाम् तस्मिन् नामि । (३) अन्ते स्थितस्येति । तेन हरिस्तत्रेत्यादौ षत्वं न ।

स्थानमें अकका आगम हो । **ए स्मि**—बहुवचनमें सकार, भकारादि विभक्तिके परे अकारके स्थानमें एकार होता है । **ङसिरत्**—अकारसे पर ङस्के स्थानमें अत् हो । **ङस्स्य**—अकारसे पर ङस्के स्थानमें स्य आदेश हो । **ओसि**—ओस् विभक्तिके परे अकारका एत्व हो । **नुडामः**—समानसे पर आम्को नुडागम हो । **नामि**—नुट् सहित आम् विभक्तिके परे पूर्वका दीर्घ हो । **क्विलात्**—कवर्ग और इल प्रत्याहारसे पर किसी भी सूत्रसे विहित सकारके स्थानमें षकार

आमन्त्रणे सिधिः ॥ १९ ॥ आमन्त्रणमभिमुखीकरणं तस्मिन्नर्थे विहित-सिधिसंज्ञको भवति ॥ १९ ॥

समानाद्धेर्लोपोऽधातोः ॥ २० ॥ समानादुत्तरस्य धेर्लोपो भवत्यधातोः । **आभिमुख्याभिव्यक्तये हेशब्दस्य प्राक् योगः** । हे देव । हे देवौ । हे देवाः । एवं घटपटस्तम्भकुम्भादयोऽप्यकारान्ताः पुल्लिङ्गाः ॥२०॥

अकारान्तानामपि सर्वादीनां तु विशेषः ।

सर्व । विश्व । उभ । उभय । अन्य । अन्यतर । इतर । डतर । डतम । कतर । कतम । सम । सिम । नेम । एक । पूर्व । पर । अवर । दक्षिण । उत्तर । अपर । अधर । स्व । अन्तर् । त्यद् । तद् । यद् । एतत् । इदम् । अदस् । द्वि । किम् । युष्मत् । अस्मत् । भवतु । एते सर्वादयस्त्रीलिङ्गाः । तत्र पुंल्लिङ्गत्वेन रूप ज्ञेयम् । सर्वः । सर्वौ । वहुवचने सर्व जस् इति स्थिते—

जसी ॥ २१ ॥ सर्वादिरकारान्तात्परो जस् ई भवति (१) । 'अ ई ए' सर्वे ॥ सर्वम् । सर्वौ । सर्वान् । 'अम्शसोरस्य', 'सो नः पुस', 'शसि' पूर्वस्य दीर्घः । तृतीयैकवचने सर्व इन इति स्थिते—

षरनॄणोऽनन्ते ॥ २२ ॥ षकाररेफऋवर्णेभ्यः परस्य नकारस्य णकारादेशो भवति । अन्ते स्थितस्य न भवति सर्वानित्यादौ ॥ २२ ॥

अवकुप्वन्तरेऽपि ॥ २३ ॥ अवप्रत्याहारेण कवर्गेण पवर्गेण च मध्ये व्यवधानेऽपि नस्य णो भवति नान्येन । सर्वेण । सर्वाभ्याम् । 'आद्भि' इत्यात्वम् । सर्वैः ॥ चतुर्थ्येकवचने सर्व ए इति स्थिते—

---

(१) जस् ई इति । जसः स्थाने ईकार... अनेकालत्वात् सर्वादेशो

आदेश हो । **आमन्त्रणे**—अभिमुखीकरण (सम्बोधन) अर्थमे वर्तमान सि (प्रथमैकवचन) की धिसंज्ञा हो । **समाना**—समानसे उत्तर धातुभिन्न धिसंज्ञाका लोप होता है । **आभिमुख्य**—सम्बोधन प्रकट करनेके लिये हे शब्दका पूर्व प्रयोग करना चाहिये ।

जसी—अकारान्त सर्वादिसे पर जस्के स्थानमे ई आदेश हो । **षरनॄ**—रेफ, षकार और ऋवर्णसे पर एक पदस्थ अपदान्त नकारके स्थानमे णकार हो । **अवकु**—अव प्रत्याहार, कवर्ग, अनुस्वार, विसर्ग और ≍क≍प व्यवधान

सर्वादेः स्मट् ॥ २४ ॥ सर्वादेरकारान्तात्परस्य चतुर्थ्येकवचनस्य स्मडागमो भवति । 'ए ऐ ऐ' । सर्वस्मै । सर्वाभ्याम् । सर्वेभ्यः ॥२४॥ पञ्चम्येकवचने सर्व अत् इति स्थिते—

अतः सर्वादेः ॥ २५ ॥ सर्वादेरकारान्तात्परस्यातः स्मडागमो भवति । सर्वस्मात् । सर्वाभ्याम् । सर्वेभ्यः । षष्ठ्येकवचने सर्व अस् इति स्थिते, 'ङस् स्य' । सर्वस्य । 'ए अय्' सर्वयोः ॥ २५ ॥ सर्व आम् इति स्थिते—

सुडामः ॥ २६ ॥ सर्वादेरवर्णान्तात् परस्यामः सुडागमो भवति । (१) सर्वेषाम् ॥ सप्तम्येजवचने सर्व ङि इति स्थिते—

(२) **ङिस्मिन् ॥ २७ ॥** सर्वादेरकारान्तात् परस्य ङे स्मिन् भवति । सर्वस्मिन् । सर्वयोः । सर्वेषु ॥ (३) हे सर्व । सर्वौ । हे सर्वे । एवं विश्वादीनामेकशब्दपर्यन्तानां रूपं ज्ञेयम् । डतरडतमौ विहाय । तौ प्रत्ययौ । ततस्तदन्ता शब्दा ग्राह्याः । पूर्वः । पूर्वौ ॥ **पूर्वादीनां तु नवानां जसि ईकारो वा वक्तव्यः*** पूर्वे । पूर्वा । परे । पराः इत्यादि ॥ **ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ वा वक्तव्यौ*** । पूर्वस्मात् । पूर्वात् । पूर्वस्मिन् । पूर्वे इत्यादि । **प्रथमचरमतयायडल्पार्धकतिपयनेमानां जसीकारो वा वक्तव्यः*** प्रथमे । प्रथमाः । चरमे । चरमा. । शेषं देववत् । तयायडौ प्रत्ययौ ॥ **तीयस्य सर्वशब्दवद्रूपं ङित्सु वा वक्तव्यम्*** ।

बोध्यः । (१) 'एत् भि बहुत्वे' इत्यकारस्यैत्वम् । 'क्विलात्षः सः कृतस्य' इति षत्वं च बोध्यम् ।

(२) 'ङि' इत्यविभक्तिको निर्देशः । (३) आभिमुख्याभिव्यक्तये

रहने पर भी रेफ, षकार और ऋवर्णसे पर नकारके स्थानमे णकार हो । **सर्वादेः**—अकारान्त सर्वादिसे पर चतुर्थीके एकवचन ङेके स्थानमें स्मट् आगम हो । **अतः सर्वादेः**—अकारान्त सर्वादिसे पर ङसिके स्थानमे आदेश जो अत् उसके स्थानमे स्मट्का आगम हो । **सुडामः**—अवर्णान्त सर्वादिसे पर आम्को सुट् हो । **ङिस्मिन्**—अकारान्त सर्वादिसे पर ङे को स्मिन् हो । **पूर्वादीनां**—पूर्वादि नवोंसे पर जस्के स्थानमे ईकार आदेश हो, विकल्पसे । **प्रथम**—प्रथम शब्द, चरम शब्द, तयप प्रत्ययान्त, अयङ् प्रत्ययान्त शब्द, अल्प शब्द, अर्घ शब्द, कतिपय शब्द और नेम शब्दसे पर जस्के स्थानमें ईकार हो, विकल्पसे । **तीयस्य**—तीयप्रत्ययान्तका रूप सर्वशब्दके समान ङित् (ङे, ङसि, ङि)

द्वितीयस्मै, द्वितीयाय । द्वितीयस्मात्, द्वितीयात् । द्वितीयस्मिन्, द्वितीये । एवं तृतीयः । **उभशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः ।** उभौ । उभौ । उभाभ्याम् । उभाभ्याम् । उभाभ्याम् । उभयोः । उभयोः । हे उभौ । **उभयशब्दस्य द्विवचनाभावादेकवचनबहुवचने भवतः ।** उभयः । उभये । उभयम् । उभयान् । उभयेन । उभयैः । उभयस्मै । उभयेभ्यः । (१) इत्यादि ।।२७।।

अकारान्तः पुलिङ्गो मासशब्दः—

मासस्याल्लोपो वा ।। २८ ।। मासशब्दस्याकारास्य लोपो वा भवति सर्वासु विभक्तिषु परतः ।। २८ ।।

हसेपः सेर्लोपः ।। २९ ।। हसान्तादीबन्ताच्च परस्य सेर्लोपो भवति । माः मासः मासौ मासौ मासः मासाः । मासम् मासम् मासौ मासौ मासः मासान् । मासा मासेन । 'स्रोर्विसर्गः' आदबेलोपश् । माभ्याम् मासाभ्याम् माभिः मासैः । मासे मासाय माभ्याम् मासाभ्याम् माभ्यः मासेभ्यः । मासः मासात् माभ्याम् मासाभ्याम् माभ्यः मासेभ्यः । मासः मासस्य मासोः मासयोः मासाम् मासानाम् । मासि मासे मासोः मासयोः मास्सु मासेषु । हे माः हे मास हे मासौ हे मासौ हे मासः हे मासाः ।। २९ ।।

आकारान्तः पुल्लिङ्गः सोमपाशब्दः । सोमपाः सोमपौ सोमपाः । अधातोरिति विशेषणाद्धेर्लोपो नास्ति । हे सोमपाः । सोमपाम् सोमपौ । बहुवचने सोमपा अस् इति स्थिते—

आतो धातोर्लोपः ।। ३० ।। धातुसम्बन्धिन आकारस्य लोपो भवति शसादौ स्वरे परे । सोमपः । सोमपा । शोमपाभ्याम् सोमपाभिः । सोमपे सोमपाभ्याम् सोमपाभ्यः । सोमपः सोमपाभ्याम् सोमपाभ्यः । सोमपः सोमपोः सोमपाम् । सोमपि सोमपोः सोमपासु । एवं कीलालपाशङ्खध्माप्रभृतयः ।।३०।।

इकारान्तः पुंल्लिङ्गो हरिशब्दः । प्रथमैकवचने हरिः ।

आमन्त्रणे (सम्बोधने) सर्वत्र 'हे' शब्दस्य प्रयोगः (१) उभयेभ्य इत्यादि । सर्वादिः सर्वनामाख्यो न चेद्गौणोऽथवाभिधा । पूर्वादिश्च व्यवस्थायां समोऽतुल्येऽन्तरोऽपुरि ।। १ ।। परिधाने बहिर्योगेस्वोऽर्थज्ञातयन्यवाच्यपि ।

विभक्तिमे हो । **मासस्य**—मास शब्दके अकारका लोप हो, सभी विभक्तिके परे । **हसेपः**—हसन्त और ईबन्त से पर सिका लोप हो ।

आतो—धातुसम्बन्धी अकारका लोप हो शसादि स्वर विभक्तिके परे ।

औ यू ॥ ३१ ॥ इकारान्तादुकारान्ताच्च पर औ यूत्वं आपद्यते । ई ऊ भवतः (१) हरी ॥ ३१ ॥

ए ओ जसि ॥ ३२ ॥ इकारान्तस्य उकारान्तस्य(२) च जसि परे एकार ओकारश्च भवति । हरयः ॥ ३२ ॥

घौ ॥ ३३ ॥ इकारान्तस्य उकारान्तस्य च घिविषये एकार ओकारश्च भवति । हे हरे । (३) 'समानाद्धेर्लोपोऽधातोः' । हे हरि हे हरयः । हरिम् हरी हरीन् ॥ ३३ ॥

टा नाऽस्त्रियाम् ॥ ३४ ॥ इकारान्तादुकारान्ताच्च परष्टा ना भवत्यस्त्रियाम् । हरिणा हरिभ्याम् हरिभिः ॥ ३४ ॥ हरि ङे इति स्थिते—

ङिति ॥ ३५ ॥ इकारान्तस्य उकारान्तस्य च ङिति परे एकार ओकारश्च भवति । हरये हरिभ्याम् हरिभ्यः ॥ ३५ ॥ हरि ङसि इति स्थिते—

(४) **ङसिङसोरस्य** ॥ ३६ ॥ एदोद्भ्यां परस्य ङसिङसोरकारस्य लोपो भवति । हरेः हरिभ्याम् हरिभ्यः । हरेः हर्योः हरीणाम् ॥३६॥ हरि ङि इति स्थिते—

ङेरौ डित् ॥ ३७ ॥ इदुद्भ्यामुत्तरस्य ङेरौ भवति स च डित् ॥ ३७ ॥

डिति टेः ॥ ३८ ॥ डिति परे टेर्लोपो भवति । हरौ हर्योः हरिषु ।

---

(१) इकारान्तशब्दात् ईत्वम्, उकारान्तशब्दात् ऊत्वमिति ज्ञेयम् ।

(२) अङ्गस्येत्यर्थः । नत्वागमः । (३) समानाद्धेरित्यनेन धेर्लोपे अनन्तरञ्च एत्वम् । (४) ङस्येतिपाठान्तरम् ।

औ यू—इकारसे पर औकारको ईकार और उकारसे पर औकारको ऊकार हो । **ए ओ**—जस् विभक्तिके परे इकारान्तको ए और उकारान्तको ओ हो । **घौ**—घिके विषयमे इकारान्त का ए और उकारान्तका औ हो । **टा ना**—इकारान्त और उकारान्तसे पर टाके स्थानमे ना आदेश हो, स्त्रीलिङ्गमें छोडकर । **ङिति**—ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्तिके परे इकारान्तको ए और उकारान्तको ओ हो । **ङसिङसो**—एत्, ओत्से पर ङसि-ङस्के अकारका लोप हो । **ङेरौ**—इत्, उत्से पर ङिके स्थानमें औ हो और वह डित्संज्ञक हो । **डिति टेः**—डित्के परे टिका लोप हो ।

एवमग्निगिरिरविकविप्रभृतयः पुल्लिङ्गा एतैरेव सूत्रैः सिध्यन्ति । उकारान्ताश्च विष्णुवायुभानुप्रभृतय एतैरेव सूत्रैः सिध्यन्ति । भानुः भानू भानवः । भानुम् भानू भानून् । भानुना भानुभ्याम् भानुभिः । भानवे भानुभ्याम् भानुभ्यः । भानोः भानुभ्याम् भानुभ्यः । भानोः भान्वोः भानूनाम् । भानौ भान्वोः भानुषु । हे भानो हे भानू हे भानवः इत्यादि ॥ ३८ ॥ सखिशब्दस्य भेदः । सखि सि इति स्थिते—

सेर्डाऽघेः ॥ ३९ ॥ सखिशब्दात्परस्य सेरघेर्डा भवति स च डित् । डित्वाट्टिलोपः । सखा । अघेरिति विशेषणादेकारो घिविषये । हे सखे ॥ ३९ ॥

ऐ सख्युः ॥ ४० ॥ सखिशब्दस्यैकारो भवति पञ्चसु परेषु । (१) षष्ठीनिर्दिष्टस्यादेशस्तदन्तस्य ज्ञेयः ॥ ४० ॥

द्विवचनस्या वा छन्दसि ॥ ४१ ॥ द्विवचनस्य औ आ भवति वेदे । सखायौ सखाया सखायः । सखायम् सखायौ सखीन् ॥ ४१ ॥ सखि टा इति स्थिते—

सखिपत्योरीक् ॥४२॥ सखिपतिशब्दयोरीगागमो भवति टाङेङिषु परतः । (२)दीर्घत्वान्न ना । सख्या । 'आगमजमनित्यम्' इति न्यायात् आगामजं कार्यमनित्यं स्वात् वा छन्दसि इत्यर्थः । (३) सखिना (पतिना) सखिभ्याम् सखिभिः । सख्ये सखिभ्याम् सखिभ्यः ॥ ४२ ॥ सखि ङसि इति स्थिते—

---

(१) ननु शत्रुवदादेश इति वचनात् सर्वस्याऽपि कथं न एकार इत्यत आह—षष्ठीनिर्दिष्टस्येति । (२) सखिपतिशब्दयोः 'ईक्' आगमे 'सवर्णे दीर्घः सह' इति प्रथममन्तरङ्गत्वाद्दीर्घः ततो 'टा नाऽस्त्रियाम्'मिति प्राप्तेऽपि दीर्घत्वान्न ना इति भावः ।

(३) सखिना पतिनेति । 'सखिना वा नरेन्द्रेण' नष्टे, मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ' इत्यादि रामायणपाराशर्यादीनां प्रयोगाणां 'क्षेत्रस्य पतिना वयम्' इतिवत्, छांदसत्वेऽपि छांदसा अपि क्वचिद् भाषायां भवन्ति'

सेर्डाऽघेः—सखि शब्दसे पर सिके स्थानमे डा आदेश हो, घिको छोड़कर और वह डा डित् हो । **ऐ सख्युः**—सखि शब्दको ऐकार आदेश हो पाँच वचनोंके परे । **द्विवचनस्य**—वेदमें सखि शब्दके प्रथमा द्विवचन औ को विकल्पसे आकार आदेश हो । **सखिपत्योः**—सखि और पति शब्दको ईक् का आगम हो, टा, ङे

ऋङ्ङे ॥४३॥ (१) सखिपतिशब्दयो ऋगागमो भवति ङसिङसोरकारे परे ॥ ४३ ॥ सख्यृ ङस् इति स्थिते ।

ऋतो ङ उः ॥४४॥ ऋकारान्तात्परस्य ङसिङसोर्ङकारस्य उकारो भवति स च डित् (२) । सख्युः सखिभ्याम् सखिभ्यः । सख्युः सख्योः सखीनाम् । सप्तम्येकवचने कृते । 'ङे रौ डित्' इत्यथौकारे कृते सखिपतिशब्दयोरीगागमो भवति । सख्यौ सख्योः सखिषु । पतिशब्दस्य प्रथमाद्वितीययोर्हरिशब्दवत्प्रक्रिया । तृतीयादौ तु सखिशब्दवत् । पतिः पती पतय. इत्यादि ॥ **पतिरसमास एव सखिवद्वक्तव्यः*** । ततः समासान्तस्य नादयो भवन्ति । प्रजापतिनो प्रजापतये इत्यादि ॥ ४४ ॥

द्विशब्दो नित्यं द्विवचनान्तः । द्वि औ इति स्थिते—

त्यदादेष्टेरः स्यादौ ॥४५॥ त्यदादेष्टेरकारो भवति स्यादौ परे । द्वौ द्वौ द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वयोः द्वयोः । त्यदादीना घेरभावः । त्रिशब्दो नित्यं वहुवचनान्तः त्रि जस् इति स्थिते । 'ए ओ जसि' इत्येकारे कृते अयादेशः । त्रयः त्रीन् त्रिभिः त्रिभ्यः त्रिभ्यः ॥ ४५ ॥

त्रेरयङ् ॥ ४६ ॥ त्रिशब्दस्यायङादेशो भवति नामि परे ॥ **ङिदन्तस्य**

इति न्यायेन 'तं तस्थिवांसं नगरोपकण्ठे' इत्यादि कविप्रयोगवद् व्याख्येयाः । इत्यभिप्रायः । तेन 'सीतायाः पतये नमः' इति साधुः । (२) **पूर्वसूत्रात्सखिपतीत्यनुवर्तते इत्याशयेनाह—'सखि पतिशब्दयोरिति ।** (३) **डित्वाट्टिलोपः ।**

और ङि विभक्तिके परे । **ऋङ्ङे**—सखि और पति शब्दको ऋक्का आगम हो ङसि, ङस् सम्बन्धी अकारके परे । **ऋतो ङ उः**—ऋकारान्तसे पर ङसि, ङस् सम्बन्धी अकारका उकार हो और वह उकार डित् हो । **पतिरसमास**—असमासान्त पति शब्द ही सखि शब्दके तुल्य है । अर्थात् असमासमें ही पति शब्दको सखिशब्दवत् ना आदि आदेश हो । **त्यदादेष्टेरः**—त्यद्, तद्, यद्, एतद्, इदम्, अदस्, द्वि, किम्, युष्मद्, अस्मद् ये त्यदादि है । इन त्यदादिकी टिका अकार हो स्यादि विभक्तिके परे । **त्रेरयङ्**—त्रिशब्दको अयङ् आदेश हो नाम अर्थात् नुट्सहित आम् विभक्तिके परे । **ङिदन्तस्य**—डित् (अयङादि)

वक्तव्यः* (१) त्रयाणाम्। त्रिषु। कतिशब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। कति जस् इति स्थिते ॥, कतिशब्दाज्जश्शसोर्लुग्वक्तव्यः*। इति जश्शसोर्लुक्। लुकि न तन्निमित्तम्। (२) कति कति कतिभिः कतिभ्यः कतिभ्यः कतीनाम् कतिषु। त्रिषु लिङ्गेषु चायं सरूपः ॥ ४६ ॥

ईकारान्तः पुंल्लिङ्गः सुश्रीशब्दः। सुश्रीः। सुश्री औ इति स्थिते—

य्योर्धातोरियुवौ स्वरे ॥४६॥ धातोरिकारोकारयोरियुवौ भवतः स्वरे परे। सुश्रियौ सुश्रियः। हे सुश्रीः हे सुश्रियौ हे सुश्रियः। सुश्रियम् सुश्रियौ सुश्रियः। सुश्रिया सुश्रीभ्याम् सुश्रीभिः। सुश्रिये सुश्रीभ्याम् सुश्रीभ्यः। सुश्रियः सुश्रीभ्याम् सुश्रीभ्यः। सुश्रियः सुश्रियोः सुश्रियाम्। सुश्रियि सुश्रियोः सुश्रीषु। तथैव सुधीशब्दः। सुधीः सुधियौ इत्यादि। ऊकारान्तः पुंल्लिङ्गः स्वयंभूशब्दः। स्वयंभूः स्वयंभुवौ स्वयंभुवः। स्वयंभुवम् स्वयंभुवौ स्वयंभुवः। स्वयंभुवा स्वयंभूभ्याम् स्वयंभूभिः। स्वयंभुवे स्वयंभूभ्याम् स्वयंभूभ्यः। स्वयंभुवः स्वयंभूभ्याम् स्वयंभूभ्यः। स्वयंभुवः स्वयंभुवोः स्वयंभुवाम्। स्वयंभुवि स्वयंभुवोः स्वयंभूषु ॥ ४७ ॥

सेनानीशब्दस्याविशेषो हसादौ। सेनानीः। स्वरादौ तु विशेषः। सेनानी औ इति स्थिते—

य्वौ वा ॥४८॥ धातोरवयवसंयोगः पूर्वो यस्मादीकारादूकाराच्च नास्ति तदन्तस्यानेकस्वरस्य कारकाव्ययपूर्वस्यैकस्वरस्य च धातोरीकारस्य ऊकारस्य च यकारवकारौ भवतः स्वरे परे। वर्षाभूपुनर्भूव्यतिरिक्तभूशब्दसुधीशब्दौ

---

(१) 'नामि' इत्यनेन दीर्घः। अयङादेशेन दीर्घस्य बाधो न (२) प्रत्ययनिमित्तमङ्गकार्यं न। तेन 'ए ओ जसि' इत्यनेनैकारो न भवति।

आगम अन्त्यके स्थानमें हो, ऐसा कहना चाहिये। **कतिशब्दात्**—कति शब्द से पर जस, शस्का लुक् हो, ऐसा कहना चाहिये। **य्योर्धातोः**—स्वरवर्णके परे ईकारके स्थानमें इय् और ऊकारके स्थानमे उव हो। **य्वौ वा**—जिस ईकार, ऊकारसे धातुका अवयव संयोग यथा सुश्री, यवक्रीके तुल्य अक्षर, संयोगपूर्व (आदिमें) न हो तदन्त ईकारान्त, ऊकारान्त अनेक स्वरके यकार, वकार होता है—ईकारके स्थानमें यकार, ऊकारके स्थानमे वकार—स्यादि

वर्जयित्वा । (१) वाग्रहणादियं विवक्षा । सेनानीः सेनान्यौ सेनान्यः । हे सेनानीः हे सेनान्यौ हे सेनान्यः । सेनान्यम् सेनान्यौ सेनान्यः । सेनान्या सेनानीभ्यां सेनानीभिः । सेनान्ये सेनानीभ्यां सेनानीभ्यः । सेनान्यः सेनानीभ्यां सेनानीभ्यः । सेनान्यः सेनान्योः ॥ सेनान्यादीनां वामो नुट् वक्तव्यः* । सेनान्या सेनानीनाम् ॥ ४८ ॥

आम् ङे नियश्च ॥४९॥ आबन्ताडीवन्तान्नीशब्दाच्चोत्तरस्य ङेरामादेशो भवति । सेनान्याम् सेनान्योः सेनानीषु । वातप्रमीशब्दस्य भेदः । वातप्रमीः वातप्रम्यौ वातप्रम्यः । हे वातप्रमीः हे वातप्रम्यौ हे वातप्रम्यः । वातप्रमीम् वातप्रम्यौ वातप्रमीन् । वातप्रम्या वातप्रमीभ्याम् वातप्रमीभिः । वातप्रम्ये वातप्रमीभ्याम् वातप्रमीभ्यः । वातप्रम्यः वातप्रमीभ्याम् वातप्रमीभ्यः । वातप्रम्यः वातप्रम्योः । आमि नुट् । वातप्रमीनाम् । ङौ तु सवर्णदीर्घः । वातप्रमी वातप्रम्योः वातप्रमीषु । (२)एवं ग्रामणीप्रभृतयः सेनानीवत् ।

अमि वातप्रमीमाहुः शसि वातप्रमीनिति ।
ङौ तु वातप्रमी ज्ञेया शेषं सेनानीवद्बिदुः ॥ (३)

ऊकारान्ताश्च यवलूप्रभृतयः (४) तथैवोकारान्तो हूहूशब्दः । हूहूः हूह्वौ हूह्वः । इत्यादि ॥ ४९ ॥ ऋकारान्तः पुंलिङ्गः पितृशब्दः—

से रा ॥५०॥ ऋकारान्तात्परस्य सेः, आ भवति, स च डित् । डित्वाट्टिलोपः । पिता ॥ ५० ॥

---

(१)वाग्रहणादियं विवक्षेति । अत्र वाशब्दो व्यवस्थार्थबोधको न तु विकल्पार्थः । तेन वर्षाभू, पुनर्भू, दृन्भू, करभू, इत्यादौ वकारः अन्यत्र उकारः इकारश्च । एकस्वरे तु नीः नियौ नियः इत्यादि ।

(२) एवं यान्त्यनेनेति 'ययी' । मार्गः । पाति लोकमिति 'पपी' सूर्यः इत्यादयो बोध्याः । (३) केचित्तु वातप्रमीशब्दो वातं प्रमिमीते इति विग्रहे ईप्रत्यान्तेन क्विबन्तेन वा साधयन्ति । तत्र क्विबन्तवातप्रमीशब्दस्य अमि शसि ङौ च विशेषः । वातप्रम्यम् वातप्रम्यः । वातप्रम्यि । इति । (४) यवं लुना-

---

स्वरके परे । **सेनान्या**—सेनानी आदि शब्दोंके आम्को नुट् हो, विकल्पसे । **आम् ङे**—आप् प्रत्ययान्त, ईप् प्रत्ययान्त और नी शब्दसे उत्तर ङी विभक्तिको आम् होता है । **से रा**—ऋकारान्तसे पर सि विभक्तिको आ आदेश हो ।

अर् पञ्चसु ॥ ५१ ॥ ऋकारस्यार् भवति पञ्चसु परेषु स च ङित्। पितरौ पितरः ॥ ५१ ॥

घेरर् ॥ ५२ ॥ ऋकारान्तात्परस्य घेरर् भवति स च ङित् । हे पितः हे पितरौ हे पितरः । पितरम् पितरौ पितॄन्(१)पित्रा पितृभ्याम् पितृभिः । पित्रे पितृभ्याम् पितृभ्यः । पितुः पितृभ्याम् पितृभ्यः । पितुः पित्रोः पितॄणाम् ॥४२॥

ङौ ॥ ५३ ॥ ऋकारस्यार्भवति ङौ परे । पितरि पित्रोः पितृषु । एवं जामातृभ्रात्रादयः । एवं नृशब्दः । ना नरौ नरः । नरम् नरौ नॄन् । न्रा नृभ्याम् नृभिः । न्रे नृभ्याम् नृभ्यः । नुः नृभ्याम् नृभ्यः । नुः न्रोः ॥ ५३ ॥

नुर्वा नामि दीर्घः ॥५४॥ नृशब्दस्य नामि परे वा दीर्घो भवति । नृणाम् नॄणाम् । नरि न्रोः नृषु । हे नः हे नरौ हे नरः ॥ ५४ ॥

कर्तृशब्दस्य पञ्चसु विशेषः—

स्तुरार् ॥ ५५ ॥ सकारतृप्रत्ययसम्बन्धिन ऋकारस्याऽऽर्भवति पञ्चसु परेषु । कर्तृ सि इति स्थिते । यदादेशस्तद्वद्भवति । 'सेरा' । ङित्वाटेर्लोपः । कर्ता कर्तारौ कर्तारः । हे कर्तः हे कर्तारौ हे कर्तारः । कर्तारम् कर्तारौ कर्तॄन् । कर्त्रा कर्तृभ्याम् कर्तृभिः । कर्त्रे कर्तृभ्याम् कर्तृभ्यः । कर्तुः कर्तृभ्याम् कर्तृभ्यः कर्तुः कर्त्रोः कर्तॄणाम् । कर्तरि कर्त्रोः कर्तृषु । एवं नप्तृहोतृप्रशास्तृप्रभृतयः । उकारान्तस्य क्रोष्टुशब्दस्य भेदः । **उकारान्तस्यापि क्रोष्टुशब्दस्य पञ्चस्वधिषु (२) तृप्रत्ययान्तस्येव रूपं वक्तव्यम्*** क्रोष्टा क्रोष्टारौ क्रोष्टारः । क्रोष्टारम् क्रोष्टारौ । शसि परे (३) तृप्रत्यय-

---

तीति यवलूः । खलं पुनातीति खलपूः । इत्यादयः । (१) पितॄन् इति । पितृ-शस् इति स्थिते 'शसि' इति पूर्वस्य दीर्घः । 'सो नः पुंसि' इति नत्वम्'। 'अम्शसोरस्येति' अकारलोपः । ऋ रम् पित्रः । 'ऋतो ङ ङः' पितुः ।

(२) अधिषु धि भिन्नेषु । (३) तृप्रत्ययेन तुल्यं तृप्रत्ययवत् तस्य भावः

अर् पञ्चसु—ऋकारके स्थानमें अर् हो, स्यादि पाँच वचनोंमें और वह ङित् हो । **घेरर्**—ऋकारान्तसे पर घिके स्थानमें अर् हो और वह ङित् हो । **ङौ**—ऋकारको अर् हो ङि विभक्तिके परे । **नुर्वा नामि**—नृ शब्दको दीर्घ हो नुट् सहित आम विभक्तिके परे विकल्पसे । **स्तुरार्**—सकार तृप्रत्यय सम्बन्धी ऋकारके पाँच वचनोंमे आर् होता है । **उकारान्तस्य**—उकारान्त क्रोष्टु शब्दको

वद्भावाभावात् । क्रोष्टून् ॥ तृतीयादौ तृप्रत्ययान्तता वा वक्तव्या स्वरादौ* । क्रोष्ट्रा क्रोष्टुना क्रोष्टुभ्याम् क्रोष्टुभिः । क्रोष्ट्रे–क्रोष्टवे क्रोष्टुभ्याम् क्रोष्टुभ्यः । क्रोष्टुः क्रोष्टोः, क्रोष्टुभ्याम् क्रोष्टुभ्यः । क्रोष्टुः क्रोष्टोः क्रोष्ट्रोः–क्रोष्ट्वोः क्रोष्टूनाम् । नुडागमे कृते ह्रस्वादित्वात्तृज्वद्भावो नास्ति । (१) कृताकृत-प्रसङ्गी यो विधिः स नित्यः । नित्यानित्ययोर्मध्ये नित्यविधिर्बलवान् । क्रोष्टरि क्रोष्ट्रोः क्रोष्ट्वोः क्रोष्टुषु । ऋकारान्ता लृकारान्ता एकारान्ताः पुंल्लिङ्गाः शब्दा न सन्ति ॥ ५५ ॥ सुरैशब्दः—

रैस्मि ॥ ५६ ॥ रैशब्दस्याकारादेशो भवति सकारभकारादौ विभक्तौ परतः । सुराः । स्वरादौ सर्वत्रायादेशः । सुरायौ सुरायः । हे सुराः हे सुरायौ हे सुरायः । सुरायम् सुरायौ सुरायः । सुराया सुराभ्याम् सुराभिरित्यादि ॥५६॥ ओकारान्तः पुंल्लिङ्गो गोशब्दः—

ओ रौ ॥ ५७ ॥ ओकारस्यौकारादेशो भवति पञ्चसु परेषु । गौः गावौ गावः । हे गौः हे गावौ हे गावः ॥ ५७ ॥

आऽमि शसि ॥ ५८ ॥ ओकारस्यात्वं भवति अमि शसि च परे । गाम् गावौ गाः । गवा गोभ्याम् गोभिः । गवे गोभ्याम् गोभ्यः । ङस्येत्यकारलोपः । गोः गोभ्याम् गोभ्यः । गोः गवोः गवाम् ॥ ५८ ॥

तृप्रत्ययवद्भावः तस्याभावः, तृप्रत्ययवद्भावाभावः । (१) यस्य कृतेऽपि प्राप्तिरकृतेऽपि प्राप्तिः स नित्यो विधिः ।

पाँच वचनोंमें तृप्रत्ययान्तता (क्रोष्टृ आदेश) हो। **तृतीयादौ**–तृतीयादि (टादि) स्वरादिमें क्रोष्टु शब्दका तृप्रत्ययान्तता (क्रोष्टृ आदेश) विकल्पसे हो। **रैस्मि**—रैशब्दको आकार आदेश हो, सकार–भकारादि स्वादि विभक्तिके परे। **ओ रौ**–ओकारको औकार आदेश हो पाँच वचनोंके परे। **आऽमि**–ओकारको आत्व हो अम्, शस्के परे।

श्रुतौ गोरामः ॥ ५९ ॥ श्रुतौ गोशब्दात्परस्यामो नुडागमो भवति। गोनाम्। गवि गवोः गोषु। एवं सुद्योशब्दः। औकारान्तः पुंल्लिङ्गो (१) ग्लौशब्दस्तस्य हसादावविशेषः स्वरादावावादेशः। ग्लौः ग्लावौ ग्लावः। ग्लावं ग्लावौ ग्लावः। ग्लावा ग्लौभ्यामित्यादि ॥ ५९ ॥

इति स्वरान्ताः पुंल्लिङ्गाः।

—*—

अथ स्वरान्ताः स्त्रीलिङ्गाः

तत्राऽऽवन्तो गङ्गाशब्दः।

आबतः स्त्रियाम् ॥ १ ॥ अकारान्तान्नाम्नः स्त्रियां वर्तमानादाप्प्रत्ययो भवति ॥

आपः ॥ २ ॥ आबन्तात्परस्य सेर्लोपो भवति। गङ्गा ॥ २ ॥

औरी ॥ ३ ॥ आबन्तात्पर औ ईकारमापद्यते। 'अ ई ए'। गङ्गे गङ्गाः ॥ ३ ॥

घिरिः ॥४॥ आबन्तात्परो घिरिर्भवति। हे गङ्गे हे गङ्गे हे गङ्गाः ॥४॥

अम्बादीनां घौ ह्रस्वः ॥५॥ अम्बादीनां घौ परे ह्रस्वो भवति। हे अम्ब हे अक्क हे अल्ल ॥ **असंयुक्तानां डलकवतां प्रतिषेधो वाच्यः*।** हे अम्बाडे हे अम्बाले हे अम्बिके इत्यादौ ह्रस्वो न भवति। गङ्गाम् गङ्गे। पुस इति विशेषणात् स्त्रियां शसि सकारस्य नकारो न भवति। गङ्गाः ॥५॥

---

(१) **ग्लौश्चन्द्रः 'ग्लौमृगाङ्कः कलानिधिः' इत्यमरः।**

श्रुतौ—वेदमें गो शब्दसे पर आम् विभक्तिको नुट्का आगम होता है।

इति स्वरान्तपुंल्लिङ्गः

आबन्तः—स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान अकारान्त नामसे आप् प्रत्यय होता है। **आपः**—आप् प्रत्ययान्तसे पर सि विभक्तिका लोप होता है। **औरी**—आप् प्रत्ययान्तसे पर औ विभक्तिके स्थानमें ईकार होता है। **घिरिः**—आप् प्रत्ययान्तसे पर घिके स्थानमें इकार होता है। **अम्बादीनां**—अम्बादि शब्दोंका ह्रस्व

टौसोरे ॥ ६ ॥ आबन्तस्य टौसोः परयोरेत्वं भवति। अयादेशः। गङ्गाया गङ्गाभ्याम्। गङ्गाभिः ॥ ६ ॥

ङितां यट् ॥७॥ आबन्तात्परेषा ङे, ङसि, ङस्, ङि, इत्येतेषां यडागमो भवति टकारः स्थाननियमार्थः। गङ्गायै गङ्गाभ्याम् गङ्गाभ्यः। गङ्गायाः गङ्गाभ्याम् गङ्गाभ्यः। गङ्गायाः गङ्गयोः ॥ **आबान्तादीबन्तादामो नुट् वक्तव्यः*।** गङ्गानाम्। 'आम् ङेः' इत्याम्। गङ्गायाम् गङ्गयोः गङ्गासु। एवं श्रद्धा मेघा शाला माला हेला दोला प्रभृतयः ॥ ७ ॥

सर्वा सर्वे सर्वाः। हे सर्वे। सर्वाम् सर्वे सर्वाः। सर्वया सर्वाभ्याम् सर्वाभिः। सर्वादीनां तु ङित्सु विशेषः।

यटोऽच्च ॥ ८ ॥ आबन्तात्सर्वादेः परस्य यटः सुडागमो भवति पूर्वस्य चापोऽकारो भवति। सर्वस्यै सर्वाभ्याम् सर्वाभ्यः। सर्वस्याः सर्वाभ्याम् सर्वाभ्यः। सर्वस्याः सर्वयोः सर्वासाम्। सर्वस्याम् सर्वयोः सर्वासु ॥ ८ ॥

आकारान्तो जराशब्द.॥ **जरायाः स्वरादौ जरस् वा वक्तव्यः*।** जरा जरसौ जरे जरसः जराः। जरसम् जराम् जरसौ जरे जरसः जराः। जरसा जरया जराभ्याम् जराभि.। जरसे जरायै जराभ्याम् जराभ्यः। जरसः जरायाः जराभ्याम् जराभ्य.। जरसः जरायाः जरसोः जरयोः जरसाम् जराणाम्। जरसि जरायाम् जरसोः जरयोः जरासु। हे जरे हे जरसौ हे जरे हे जरसः हे जराः।

इकारान्तः स्त्रिलिङ्गो बुद्धिशब्दः। तस्य च प्रथमाद्वितीययोः हरिशब्दवत्प्रक्रिया। बुद्धिः बुद्धी बुद्धयः। बुद्धिम् बुद्धी बुद्धीः। स्त्रीत्वाच्छसो नत्वाभावः। बुद्धया। बुद्धिभ्याम् बुद्धिभिः ॥

इदुद्भ्याम् ॥ ९ ॥ स्त्रिया वर्तमानाभ्यामिकारोकाराभ्यां परेषा ङितां

होता है, घिके परे। असंयुक्त ड ल क वान् अम्बादिकोंका घिके परे ह्रस्व नहीं होता है। **टौसोरे**—टा और ओस् विभक्तिके परे आबन्त शब्दको एकार होता है। **ङितां**—आबन्तसे पर ङे ङसि ङस् ङि विभक्तियोंको यट्का आगम होता है। **आबन्तात्**—आबन्त और ईबन्तसे पर आम्को नुट् होता है। **यटोऽच्च**—आबन्त सर्वादिसे पर यट्को सुट् हो और पूर्व आप्को ह्रस्वो हो। **जरायाः**—जरा शब्दको जरस् आदेश हो स्वरादि विभक्तिके परे विकल्पसे। **इदुद्भ्याम्**—

वचनानां वा अडागमो भवति । बुद्ध्यै बुद्धये बुद्धिभ्याम् । बुद्धिभ्यः । बुद्ध्याः बुद्धेः बुद्धिभ्याम् बुद्धिभ्यः । बुद्ध्याः बुद्धेः बुद्ध्योः बुद्धीनाम् ॥ ९ ॥

स्त्रियां य्वोः ॥ १० ॥ इश्च उश्च यू तस्मादिवर्णान्तादुवर्णान्ताच्च परस्य ङेरामादेशो भवति । बुद्ध्याम् । अडागमाभावे आमोऽप्यभावः । बुद्धौ बुद्ध्योः बुद्धिषु । एवं मतिभूतिविभूतिधृतिरुचिकृतिसिद्धिशान्तिक्षान्तिभ्रान्त्यालिशक्तिप्रभृतयः । एवं धेनुतनुरज्जुप्रभृतयः स्त्रीलिङ्गा उकारान्ता एतैरेव सूत्रैः सिद्ध्यन्ति । धेनुः धेनू धेनवः । हे धेनो हे धेनू हे धेनवः । धेनुम् धेनू धेनूः । धेन्वा धेनुभ्याम् धेनुभिः । धेन्वै धेनवे धेनुभ्याम् धेनुभ्यः । धेन्वाः धेनोः धेनुभ्याम् धेनुभ्यः । धेन्वाः धेनोः धेन्वोः धेनूनाम् । धेन्वाम् धेनौ धेन्वोः धेनुषु ॥

ईकारान्तः स्त्रीलिङ्गो नदीशब्दः ।

हसेपः सेर्लोपः ॥ ११ ॥ हसान्तादीबन्ताच्च परस्य सेर्लोपो भवति । नदी नद्यौ नद्यः ॥ ११ ॥

धौ ह्रस्वः ॥ १२ ॥ इवर्णोवर्णयोरधातोः स्त्रिया धौ परे ह्रस्वो भवति । (१) हे नदि हे नद्यौ हे नद्यः । नदीम् नद्यौ नदीः । नद्या नदीभ्याम् नदीभिः ॥ १२ ॥

ङिताम‍ट् ॥ १३ ॥ स्त्रियामीकारान्तादूकारान्ताच्च ङितां परेषां वचनानामडागमो भवति नद्यै नदीभ्याम् नदीभ्यः । नद्याः नदीभ्याम् नदीभ्यः । नद्याः नद्योः नदीनाम् । नद्याम् नद्योः नदीषु । एवं गौरीसरस्वतीब्राह्मणीकुमारीकिशोरीकलभीपार्वतीभवानीप्रभृतयः । (२) लक्ष्मीशब्दस्येबन्तत्वाभावात्सेर्लोपो नास्ति । लक्ष्मीः लक्ष्म्यौ लक्ष्म्यः । हे लक्ष्मि । शेषं नदीवत् । स्त्रीशब्दस्य ईबन्तत्वात्सेर्लोपोऽस्ति । स्त्री ॥ १३ ॥

---

(१) हे नदि । ह्रस्वविधिसामर्थ्यान्न गुणः ।

(२) 'अवीतन्त्रीतरीलक्ष्मीधीह्रीश्रीणामुणादिषु ।

स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान इकार उकारसे पर ङित् (ङे ङसि ङस् ङि) विभक्तिको विकल्पसे अट्का आगम हो । **स्त्रियां**—स्त्रीलिङ्गमे वर्तमान इवर्णान्त, उवर्णान्तसे पर ङिके स्थानमे आम् आदेश हो । **हसेपः**—हसान्त और ईबन्तसे पर सिका लोप हो । **धौ ह्रस्वः**—धातुवर्जित ईत्, ऊत् स्त्री शब्दका ह्रस्व हो धिके परे । **ङिताम‍ट्**—स्त्रीलिङ्गमे वर्तमान ईकारान्त ऊकारान्तसे पर

स्त्रीभ्रुवोः ॥ १४ ॥ स्त्रीशब्दस्य भ्रूशब्दस्य च इयुवौ भवतः स्वरे परे । स्त्रियौ स्त्रियः । हे स्त्रि हे स्त्रियौ हे स्त्रियः ॥ १४ ॥

वाऽम्शसि ॥ १५ ॥ स्त्रीशब्दस्य अमि शसि च परे वा इयादेशो भवति । स्त्रियम् स्त्रीम् स्त्रियौ स्त्रियः स्त्रीः । स्त्रिया स्त्रीभ्याम् स्त्रीभिः । स्त्रीषु । शेषं नदीवत् । श्रीः श्रियौ श्रिय. । हे श्रीः श्रियम् श्रियौ श्रियः । श्रिया श्रीभ्याम् श्रीभिः ॥ १५ ॥

वेयुवः ॥ १६ ॥ इयुवन्तात्स्त्रियां वर्तमानात् ङितां वचनानां वाडागमो भवति । स्त्रियास्तु नित्यम् । श्रियै श्रिये श्रीभ्याम् श्रीभ्यः । श्रियाः श्रियः श्रीभ्याम् श्रीभ्यः । श्रियाः श्रियः श्रियोः । **श्र्यादीनां वामो नड् वक्तव्यः*** । श्रियाम् श्रीणाम् । ङौ परेऽडागमाभावे आमोऽप्यभावः । श्रियाम् श्रियि श्रियोः श्रीषु । एवं ह्रीधीप्रभृतयोऽप्यनीन्वताः । एवं भूशब्दो भ्रूशब्दश्च । वधूकरभोरूकच्छूकण्डूजम्ब्वादीनां नदीशब्दवद्रूपं ज्ञेयम् । वधूः वध्वौ वध्वः । हे वधु । वधूम् वध्वौ वधूः । जम्बूः जम्ब्वौ जम्ब्वः । हे जम्बु हे जम्ब्वौ हे जम्ब्वः । ऋकारान्तो मातृशब्दः । माता मातरौ मातरः । मातरम् मातरौ मातॄः । 'शसि' इति दीर्घत्वम् । शेषं पितृवत् (१)स्वसृशब्दः कर्तृवत् । नत्वाभावो विशेषः । रैशब्दः सुरैशब्दवत् । नौशब्दो ग्लौशब्दवत् गौशब्दस्तु पूर्ववत् ॥ १६ ॥ इति स्वरान्ताः स्त्रीलिङ्गाः ॥

अपि स्त्रीलिङ्गशब्दानां सिलोपो न कदाचन ॥'
उणादिशाकटायनप्रणीतसूत्रैर्व्युत्पादिता एते । (१) स्वसृशब्दः कर्तृवत् ।

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता यथा ।
याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः ॥ १ ॥

ङे, ङसि, ङस् औ ङि विभक्तियोंके अट्का आगम हो । **स्त्रीभ्रुवोः**—स्त्री शब्दके इय् और भ्रू शब्दके उव् हो स्यादि स्वरके परे । **वाऽम्**—स्त्री शब्दको अम्, शस् विभक्तिके परे इय् हो विकल्पसे । **वेयुवः**—नित्य स्त्रीलिङ्गमे वर्तमान इय् उव् अन्तवाले शब्दसे पर अट्का आगम हो, ङे, ङसि, ङस् और ङि विभक्तिके परे । **श्र्यादीनां**—श्री आदि शब्दोंको नुडागम विकल्पसे होता है ।

इति स्वरान्तस्त्रीलिङ्गाः ।

अथ स्वरान्ताः नपुंसकलिङ्गाः

अकारान्तो नपुसकः कुलशब्दः तस्य प्रथमाद्वितीयैकवचने ।

(१) **अतोऽम्** ॥ १ ॥ अकारान्तान्नपुसकलिङ्गात्परयोः स्यमोरम् भवति अचौ । अमोग्रहण लुग्व्यावृत्त्यर्थम् (२) 'अम्शसोरस्य' इत्यकारलोपः । कुलम् ॥ १ ॥

ईमौ ॥२॥ (३) नपुसकलिङ्गात्पर औ ईकारमापद्यते । कुले ॥ २ ॥

जश्शसोः शिः ॥ ३ ॥ नपुंसकलिङ्गात्परयोर्जश्शसोः शिर्भवति । शकारः सर्वादेशार्थः ॥ **गुरुः शिच्च सर्वस्य वक्तव्यः** (३)* ॥ ३ ॥

नुमयमः ॥ ४ ॥ नपुंसकस्य (४) नुमागमो भवति शौ परे । यमप्रत्याहारान्तस्य न भवति । **मिदन्त्यात्स्वरात्परो वक्तव्यः***

---

(१) अतोऽमिति । अत्र म् इत्येव पदच्छेदो लाघवादस्तु । ननु मिति छेदे जरा अतिक्रान्ता येन तत् इति विग्रहे द्वितीयैकवचने अतिजरसमिति प्रयोगो न स्यात् । स्वरादिविभक्तिपरत्वाभावादेव जराशब्दस्य जरसादेशो न स्यात् । जरसादेशे कृते सति 'नपुंसकात्स्यमोर्लुक्' इति सूत्रेण लुकि चोक्तरूपासिद्धिरत आह–अम् भवतीति । अतिजरमिति रूपं जरसादेशाभावपक्षे च सेत्स्यति । (२) लुग्व्यावृत्त्यर्थमिति । विशेषविहितेन अमा तस्य तक्रन्यायेन बाधः । तथाहि 'सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दधि दीयतां तक्रं कौण्डिन्याय' अत्र यथा विशेषविहितेन तक्रेण सामान्यप्राप्तस्य दध्नो बाधः, तथाऽत्रापि ज्ञेयम् । (३) षष्ठीनिर्दिष्टस्येत्यस्यापवादः । (४) नुम् इत्यत्र उकार उच्चारणार्थः । मकारः

अतोऽम्—अकारान्त नपुंसक लिङ्गसे पर सि और अम् विभक्तिको अम् आदेश हो । **ईमौ**—नपुंसक लिङ्गसे पर औ विभक्ति ईकारके रूपको प्राप्त होता है अर्थात् औके स्थानमें ई हो जाता है । **जश्शसोः**—नपुंसक लिङ्गसे पर जस् और शस् विभक्तिके स्थान में शि आदेश हो । शिका शकार सर्वादेशार्थ है । (आगे वार्तिक देखो) । **गुरु. शिच्च**—गुरु और शित् आदेश सम्पूर्णके स्थानमें होता है । **नुमयमः**—नपुंसक लिङ्गमें शब्दको नुमागम हो 'शि' के परे । परन्तु यम प्रत्याहारके परे नही होता (अत एव अहानि, चत्वारि विमलदिवि, वारि, फलि, सुगणि, ब्रह्माणि और प्रशामि इत्यादि प्रयोगमें नुमागम नहीं होता है ।) **मिदन्त्यात्**—मित् अर्थात् मकारेत्संज्ञक

(१) **नोपधायाः** ॥ ५ ॥ नान्तस्योपधाया दीर्घो भवति शौ परे घिवर्जितेषु पञ्चसु नामि च । कुलानि । हे कुल हे कुले हे कुलानि । पुनरपि कुलं कुले कुलानि । शेषं देववत् । एवं मूलफलपत्रपुष्पकुण्डकुटुम्बादयः ॥ ५ ॥

सर्वादीनां यकारान्तानामन्यादिपञ्चशब्दव्यतिरिक्तानां प्रथमाद्वितीययोः कुलशब्दवत्प्रक्रिया । सर्वम् सर्वे सर्वाणि । शेषं पूर्ववत् । अन्यादेर्विशेषमाह—

श्त्वन्यादेः ॥ ६ ॥ अन्यादेर्गणात्परयोः स्यमोः श्तुर्भवति । शकारः (२)शित्कार्यार्थः । उकार उच्चारणार्थः ॥ ६ ॥

वाऽवसाने ॥ ७ ॥ अवसाने वर्तमानाना झमानां चबा भवन्ति चपा वा । अन्यत् अन्यद् अन्ये अन्यानि । पुनरपि । अन्यत् अन्यद् अन्ये अन्यानि । अन्यतरत् अन्यतरद् अन्यतरे अन्यतराणि २ । इतरत् इतरद् इतरे इतराणि २ । कतरत् कतरद् कतरे कतराणि २ । कतमत् कतमद् कतमे कतमानि २ । शेषं सर्वशब्दवत् । एते ह्यन्यादयः ॥ ७ ॥ इकारान्तोऽस्थिशब्दः ।

नपुंसकात्स्यमोर्लुक् ॥ ८ ॥ नपुंसकलिङ्गात्परयोः (३)स्यमोर्लुग्भवति । अस्थि ॥

स्थाननिर्णयार्थः । (१) नोपधायाः । अत्र सूत्रे 'जश्शसोः शिः' इति पूर्वसूत्रात् 'शि' इति पदमनुवर्तते । घिवर्जितेषु पञ्चसु इत्यर्थोऽन्यसूत्रोक्तसाहचर्येण बोध्यः । नामि परे इत्यस्योदाहरणम्—पञ्चानामिति । अत्र पञ्चन् आम् इति स्थिते नुटि नकारलोपे चानेन दीर्घे रूपं सिद्धम् । (२) शित् कार्यार्थः । सर्वादेशाय । सर्वाद्यन्तर्गणोऽन्यादिः । (३) स्यमोर्लुक् । अकारान्तनपुंसकलिङ्गाच्छब्दाद्विहितोऽमादेशो विशेषविहितत्वादस्य बाधको भवति ।

प्रत्यय और आगम अन्त्यस्वरसे पर हो । **नोपधायाः**—नकारान्त शब्दकी उपधाको दीर्घ हो 'शि' के परे । यह दीर्घ घिको छोड़कर पञ्च वचन और नाम पर होनेसे होता है (यथा पञ्चानाम्) **श्त्वन्यादेः**—अन्यादि (अन्य, अन्यतर, इतर, कतर, कतम) से सि और अम् विभक्तिके स्थानमें श्तु आदेश होता है । (शित् सर्वादेशार्थ है) **वाऽवसाने**—अवसानमें वर्तमान झस प्रत्याहारके वर्णोंको जब और चप हो विकल्पसे । **नपुंसकात्**—(अवर्णान्तको छोड़कर) नपुंसक लिङ्गसे पर सि और अम् विभक्तिका लोप हो ।

य्वृणाम् ॥ ९ ॥ इश्च उश्च ऋश्च य्वृः तेषा य्वृणाम् ॥ **नपुंसके धौ वा गुणो वक्तव्यः*** । हे अस्थि हे अस्थे हे अस्थिनी हे अस्थीनि ॥ ९ ॥ उक्तं हि—

'सम्बोधने तूशनसस्त्रिरूपं सान्तं तथा नान्तमथाप्यदन्तम् ।
माध्यन्दिनिर्वष्टि गुणं त्विगन्ते नपुंसके व्याघ्रपदां वरिष्ठः ॥

नामिनः स्वरे ॥१०॥ नाम्यन्तस्य नपुसकलिङ्गस्य नुमागमो भवति स्वरे परे । 'ईमौ' । अस्थिनी अस्थीनि ॥ १० ॥

अच्चास्थ्नां टादौ ॥ ११ ॥ अस्थ्यादीनां नुमागमो भवति ईकारस्य चाकारो भवति टादौ स्वरे परे ॥ ११ ॥

अल्लोपः स्वरेऽम्वयुक्ताच्छसादौ ॥ १२ ॥ नान्तस्योपधाया अकारस्य लोपो भवति शसादौ स्वरे परे । मकारवकारान्तसंयोगादुत्तरस्य न भवति । अस्थ्ना अस्थिभ्याम् अस्थिभिः । अस्थ्ने अस्थिभ्याम् अस्थिभ्यः । अस्थ्नः अस्थिभ्याम् अस्थिभ्य. । अस्थ्नः अस्थ्नोः अस्थ्नाम् ॥ १२ ॥

वेङ्योः ॥ १३ ॥ नान्तस्य नाम्ना ईङ्योः परयोर्वा अकारस्य लोपो भवति । अस्थ्नि अस्थनि । एवं दधिसक्थिअक्षिशब्दाः । दध्ना दधिभ्याम् दधिभिः । सक्थि सक्थिना सक्थीनि ॥ २ ॥ सक्थ्ना सक्थिभ्याम् सक्थिभिः । अक्ष्णा अक्षिभ्याम् अक्षिभिः ॥ वारि वारिणी वारीणि । इति पूर्ववत्प्रक्रिया ॥

य्वृणाम्—इकारान्त उकारान्त और ऋकारान्तको गुण हो । **नपुंसके धौ वा**—नपुसक लिङ्गमे धिके परे विकल्पसे गुण होता है । **सम्बोधने तू**—व्याघ्रपद गोत्रियोमे श्रेष्ठ माध्यन्दिनि आचार्य उशनस् शब्दके सम्बोधनमे सकारान्त, नकारान्त और अकारान्त इन तीनो रूपोंको (यह उदाहरण हसान्त पुल्लिगमें मिलेगा) और इकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त और लृकारान्त शब्दोंके नपुंसक लिङ्गमे गुणकी इच्छा करते है । **नामिनः**—नाम्यन्त नपुंसकको नुमागम हो, स्यादि स्वरके परे । **अच्चास्थ्नां**—अस्थि, दधि, और अक्षि शब्दको नुमागम तथा इकारको अकार हो शसादि स्वरके परे । **अल्लोपः**—नान्तके उपधाभूत अकारका लोप हो शसादि स्वरके परे किन्तु मकार, वकारके संयोगसे उत्तर अकारका लोप नहीं हो । **वेङ्योः**—ई और विभक्तिके परे नकारका उपधा-

नपुंसकस्य ह्रस्वः ॥ १४ ॥ (१)नपुंसकस्य ह्रस्वो भवति । 'नपुंसकात्स्यमोर्लुक्' । ग्रामणि । 'नामिनः स्वरे' इति नुम् । 'ईमौ' । ग्रामणिनी ग्रामणीनि । हे ग्रामणे हे ग्रामणि । 'नामिनः स्वरे' 'नोपधायाः' इति दीर्घः ।

टादावुक्तपुंस्कं पुंवद्वा ॥ १५ ॥ उक्तपुंस्कं नाम्यन्तं नपुंसकलिङ्गं टादौ स्वरे परे पुंवद्वा भवति (२) । नामिनः स्वरे । ग्रामण्या ग्रामणिना ग्रामणिभ्याम् ग्रामणिभिः । ग्रामण्ये ग्रामणिने ग्रामणिभ्याम् ग्रामणिभ्यः । ग्रामण्यः ग्रामणिनः ग्रामणिभ्याम् ग्रामणिभ्यः । ग्रामण्यः ग्रामणिनः गामण्योः ग्रामणिनोः ग्रामण्याम् । **'नुमन्तस्यामि दीर्घः'** 'नामिनः स्वरे' । ग्रामणीनाम् । 'आम् ङे' । ग्रामण्याम् ग्रामणिनि ग्रामण्योः ग्रामणिनोः ग्रामणिषु । हे ग्रामणि हे ग्रामणिनी हे ग्रामणीनि ।

'अतोऽम्' सोमपम् सोमपे सोमपानि २ । सोमपेन सोमपाभ्याम् । सोमपैः । सोमपाय(१)सोमपाभ्याम् सोमपेभ्यः । इति पूर्ववत् । उकारान्तो

---

(१) नपुंसकस्याङ्गस्य यः स्वरस्तस्य ह्रस्वः इत्यर्थः । यत्र यत्र ह्रस्वदीर्घप्लुतपदं तत्र स्वरस्यैव तत्कार्यं बोध्यम् ।

(२) 'एक एव हि यः शब्दस्त्रिषु लिङ्गेषु जायते ।
एकमेवार्थमाख्याति उक्तपुंस्कं तदुच्यते ॥' इति ।

केचित्तु—यन्निमित्तमुपादाय पुंसि शब्दः प्रवर्तते ।
नपुंसके सदैव स्यादुक्तपुंस्कं तदुच्यते ॥ २ ॥

(३) सोमपायेति । अत्र 'आतो धातोर्लोप' इति लोपो न, अस्य आकारस्य

भूत अकारका लोप हो, विकल्पसे । **नपुंसकस्य**—दीर्घ स्वरान्त नपुंसक शब्दके सब विभक्तियोंमें ह्रस्व हो । **टादावुक्त**—उक्त पुंसक नाम्यन्त नपुंसक शब्द स्वर पर होनेसे पुल्लिङ्गवत् हो, विकल्पसे ।

नोट—'उक्त पुंस्क' माने भाषित पुस्क अर्थात् तीनों लिङ्गोंमें जो शब्द एक ही अर्थको कहता हो वह उक्त पुंस्क कहलाता है (ऊपर की टिप्पणी देखो) ।

नुमन्तस्य—नुम् अन्तवाले शब्दोंका नपुंसक लिङ्गमे दीर्घ हो, आम् विभक्तिके परे ।

इति नपुंसकलिङ्गाः

— :*.०:* :—

मधुशब्दः । 'नपुंसकात्स्यमोर्लुक्' मधु । 'नामिनः स्वरे' इति नुमागमः। मधुनी । 'जश्शसोः शिः' 'नोपधायाः' इति दीर्घः मधूनि । पुनरपि मधु मधुनी मधूनि । 'नामिनः स्वरे' । मधुना मधुभ्याम् मधुभिः । पीलु पीलुनी पीलूनि । पीलूने(१) । ऋकारान्तः कर्तृशब्दः । नपुंसकात्स्यमोर्लुक्' । कर्तृ । 'नामिनः स्वरे' 'रऋनों णोऽनन्ते' । कर्तृणी कर्तृणि २ । 'ऋरम्' । कर्त्रा कर्तृणा कर्तृभ्याम् कर्तृभिः । कर्त्रे कर्तृणे कर्तृभ्याम् कर्तृभ्यः । 'ऋतो ङउः' स च डित् । 'डिति टेः' । कर्तुः कर्तृणः कर्तृभ्याम् कर्तृभ्यः । कर्तुः कर्तृण कर्त्रोः कर्तृणोः कर्तृणाम् । कर्तरि कर्तृणि कर्त्रोः कर्तृषु । हे कर्तृ हे कर्तृणी हे कर्तृणि । ऐकारान्तः अतिरैशब्दः । रायमतिक्रान्त (२)मतिरि कुलम् । उकारान्त उपगुशब्दः । उपगता गावो यस्य तदुपगु । उपगु उपगुनी उपगूनि । औकारान्तो नौशब्दः । नावमतिक्रान्तं यज्जलं तदतिनु । अतिनु अतिनुनी अतिनूनि ॥ १५ ॥

इति स्वरान्ताः नपुंसकलिङ्गाः

—: ※:०:※ :—

अथ हसान्ताः पुंल्लिङ्गाः

तत्र हकारान्तः पुंल्लिङ्गोऽनडुह् शब्दः । नामसंज्ञायां स्यादयः । **पञ्चस्वनडुह आमागमो वक्तव्यः*** ॥

सावनडुहः ॥ १ ॥ अनडुहशब्दस्य सौ परे नुमागमो भवति ॥ १ ॥

लाक्षणिकत्वात् । (१) 'पीलुर्वृक्षः फलं पिलु पीलुने न तु पीलवे । वृक्षे निमित्तं-पीलुत्वं तज्जत्वं तत्फले पुनः ॥' इति । (२) अतिरि कुलमिति । 'नपुंसकस्य ह्रस्वः' इत्यनेन सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वे प्राप्ते 'अ—इ' इत्युभयोर्मध्ये कः कार्य इति शंकायां पाणिनितन्त्रोक्तौ 'एच इग् ह्रस्वादेशे' इति सूत्रविहितौ इकारो-कारौ ग्राह्यौ । एवं अतिनु, उपगु, सुद्यु इत्यादावपि ज्ञेयम् ।

— ※※ —

पञ्चस्वनडुह—सि, औ, जस्, अम्, औ इन पाँचों वचनोंके परे अनडुह शब्द को आम् का आगम हो । **सावनडुहः**—अनडुह शब्दको नुम् हो सि विभक्ति के परे ।

संयोगान्तस्य लोपः ॥ २ ॥ संयोगान्तस्य लोपो भवति रसे । (१) **पदान्ते च । सभिन्नस्य रान्न** (२) रेफादुत्तरस्य सकारस्यैव लोपो नान्यस्य ॥२॥

हसेपः सेर्लोपः ॥ ३ ॥ हसान्तादीबन्ताच्च परस्य सेर्लोपो भवति । 'उ वम्' इति वत्वम् । लोपविधिसामर्थ्यान्न दत्वम् । अनड्वान् अनड्वाहौ अनड्वाहः । अनड्वाहम् अनड्वाहौ अनडुहः । अनडुहा ॥ ३ ॥

वसां रसे ॥ ४ ॥ वसु, स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु, अनडुह् इत्येतेषां रसे पदान्ते च दत्वं भवति । अनडुद्भ्याम् अनडुद्भिः । अनडुहे अनडुद्भ्याम् अनडुद्भ्यः । अनडुहः अनडुद्भ्याम् अनडुद्भ्यः । अनडुहः अनडुहोः अनडुहाम् । अनडुहि अनडुहोः 'खसे चपा झसानाम्' अनडुत्सु ॥ ४ ॥

घावम् ॥ ५ ॥ अनडुह् शब्दस्य घौ परे अमागमो भवति । 'सावनडुहः' । 'उ वम् स्वरहीनं परेण संयोज्यम्' । हे अनड्वन् हे अनड्वाहौ हे अनड्वाहः । इत्यादि ॥ ५ ॥ गोदुह् शब्दस्य भेदः—

दादेर्घः ॥ ६ ॥ दादेर्धातोर्हकारस्य घत्वं भवति धातोर्झसे परे नाम्नश्च रसे पदान्ते च । गोदुघ् सि इति स्थिते ॥ ६ ॥

आदिजबानां झसान्तस्य झभाश्च स्ध्वोः ॥ ७ ॥ धातोर्झसान्तस्यादौ

---

(१) **पदान्ते चेति । नन्वेवं सुद्ध्युपास्य इत्यत्र सु, द्, ध्, य्, इति स्थिते संयोगान्तपदस्यान्तो यकारः, तस्य लोपः स्यादिति चेत्, तत्र 'यवरलां संयोगान्तलोपो न भवति' इत्यर्थकं 'यणः प्रतिषेधो वाच्यः' इति वचनं कार्यमिति भावः । यद्वा पदान्ते इत्यस्य अवसाने इत्यर्थः । तेन न कुत्रापि दोषः । (२) रेफादुत्तरस्येति । तेन 'उर्ज्' 'अवर्तत्' इत्यादौ तकारलोपो न । कटचिकीरित्यादौ तु भवत्येव ।**

संयोगान्तस्य—संयोगान्तका लोप हो रस प्रत्याहारके परे। **पदान्ते च**—पदान्तमे वर्तमान नाम और धातुका जो संयोग उसका लोप हो। **सभिन्नस्य**—रेफसे पर संयोगान्तका लोप हो तो सकारका ही लोप हो—दूसरेका नहीं। **वसां रसे**—सान्तवस्वन्त और स्रंसु, ध्वंसु, भ्रंसु, अनडुह् शब्दोंको दत्व हो रस प्रत्याहारके परे। **घावम्**—अनडुह् शब्दको अमागम हो घौके परे। **दादेर्घः**—दादि धातुके हकारको घकार आदेश हो, झस और रस प्रत्याहारके परे पदान्तमे। **आदिजबानां**—झसान्त धातुके आदिमें वर्तमान

वर्तमानानां जबानां झभा भवन्ति सकारे ध्वशब्दे च परे नाम्नश्च रसे पदान्ते च ॥

वाऽवसाने ॥ ८ ॥ (१) अवसाने वर्तमानानां झसानां जबा भवन्ति चपा वा । गोधुक् गोधुग् गोदुहौ गोदुहः । हे गोधुक् हे गोदुहौ हे गोदुहः । गोदुहम् गोदुहौ गोदुहः । गोदुहा । भकारादौ "दादेर्घः" इति घत्वे आदिजबस्य दकारस्य झभे धकारे च कृते 'झभे जबाः' । गोधुग्भ्याम् गोधुग्भिः । 'खसे चपा झसानाम्' 'क्विलात्वः सः कृतस्य' इति षत्वम् । क्षसंयोगे क्षः गोधुक्षु इत्यादि ॥ ८ ॥ मधुलिह् शब्दस्य विशेषः—

हो ढः ॥ ९ ॥ धातोर्हकारस्य ढत्वं भवति झसे परे नाम्नश्च रसे पदान्ते च । 'वाऽवसाने' । मधुलिट् मधुलिड् मधुलिहौ मधुलिहः । हे मधुलिट् हे मधुलिड् हे मधुलिहौ हे मधुलिहः । मधुलिहम् मधुलिहौ मधुलिहः । मधुलिहा मधुलिड्भ्याम् । मधुलिड्भिः ॥ ९ ॥ तुरासाह् शब्दस्य भेदः—

सहेः षः साढि ॥ १० ॥ साढि रूपे सति सहेर्धातोः सकारस्य षकारादेशो भवति । तुराषाट् तुराषाड् इत्यादि (२) ॥ १० ॥ द्रुह् शब्दस्य भेदः—

द्रुहादीनां घत्वढत्वे वा ॥ ११ ॥ द्रुहादीनां धातूनां घत्वढत्वे वा भवतो रसे पदान्ते च । मित्रध्रुक् मित्रध्रुग् मित्रध्रुट् मित्रध्रुड् मित्रद्रुहौ मित्रद्रुहः । धावप्येवम् । मित्रद्रुहम् मित्रद्रुहौ मित्रद्रुहः । मित्रद्रुहा । 'झभे जबाः' मित्रध्रुग्भ्याम् मित्रध्रुड्भ्याम् । मित्रध्रुक्षु मित्रध्रुट्सु । इत्यादि । एवं तत्त्वमुह् स्नुहादयः ॥ ११ ॥ रेफान्तश्चतुर्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः—

(१) **वर्णानामभावोऽवसानसंज्ञा** । (२) **एवमेव** पृतनाषट्–हव्यवाट्–प्रष्ठवाट्–भारवाट्प्रभृतयः ।

जबोंके झभ होते है (अर्थात् 'ज ड द ग ब' के स्थानमें यथाक्रमसे 'झ ढ ध घ भ' होते है) सकार ध्व शब्दके परे तथा नामसे रस प्रत्याहारके परे पदान्तमें । **वावसाने**—अवसानमें वर्तमान झसके स्थानमें जब और चप विकल्पमें होते हैं । **हो ढः**—धातुके हकारका ढकार हो झस प्रत्याहारके परे और नामके हकारका ढकार हो रस प्रत्याहारके परे पदान्त में । **सहेः षः**—सहके सकारको षकार आदेश हो साढ रूप होने में । **द्रुहादीनां**—द्रुह, मुह, स्नुह, स्निह धातुओंके पदान्त हकारको घत्व और ढत्व हो रस प्रत्याहारके

चतुराम् शौ च ॥ १२ ॥ चतुर्शब्दस्यामागमो भवति पञ्चसु शौ च। चत्वारः चतुरः चतुर्भिः चतुर्भ्यः ॥ १२ ॥

रः संख्यायाः ॥ १३ ॥ रेफान्तसंख्यायाः परस्यामो नुडागमो भवति। णत्वं द्वित्वं च। चतुर्ण्णाम्। चतुर्षु ॥ १३ ॥ नकारान्तो राजन् शब्दः। 'नोपधायाः' इति पञ्चसु दीर्घः'—

नाम्नो नो लोपश् धौ ॥ १४ ॥ नाम्नो नकारस्यानागमजस्य लोपश् भवति रसे पदान्ते चाधौ (१)। राजा राजानौ राजानः। हे राजन् हे राजानौ हे राजानः। राजानम् राजानौ ॥ 'कल्लोपः स्वरेऽम्वयुक्ताच्छसादौ'। 'स्नोः श्चुः' इति चुत्वे नकारस्य ञकारः ॥ १४ ॥

ज्ञोर्ज्ञः ॥ १५ ॥ जकारञकारयोर्योगे ज्ञो भवति। राज्ञः राज्ञा राजभ्याम् (२) राजभिः। राज्ञे राजभ्याम् राजभ्यः। 'ङेङ्योः' राज्ञि राजनि राज्ञोः राजसु। इत्यादि। एवं यज्वन्—आत्मन्—स्वधर्मन्—प्रभृतयः। यज्वा यज्वानौ यज्वानः। यज्वानम् यज्वानौ यज्वानः। यज्वानम् यज्वानौ। 'अम्वयुक्तान्' इति विशेषणादल्लोपो नास्ति। यज्वनः यज्वना इत्यादि। श्वनयुवन्मघवन् शब्दानां पञ्चसु राजन्शब्दवत्प्रक्रिया। शसादौ तु विशेषः ॥

श्वादेर्व उः ॥ १६ ॥ श्वादेर्वकारस्य उत्वं भवति शसादौ स्वरे परे (३) ऽतद्धिते ईपि ईकारे च। शुनः। शुना श्वभ्याम् श्वभिः। इत्यादि। युवन् शब्दे वकारस्योत्वे कृते 'सवर्णे दीर्घः सह'। यूनः। यूना युवभ्याम् युवभिः। इत्यादि। मघोनः मघोना मघवभ्यामित्यादि ॥ १६ ॥

---

(१) चकारात्क्वचिन्नाम्नो नकारस्य लोपश् न भवति। सुष्ठु हिनस्ति पापमिति 'सुहिम्' इत्यादौ। (२) अत्र 'अद्भिः' इत्यात्वं प्राप्तमपि 'लोपशि पुनर्न सन्धिः' इति नियमान्न भवति। (३) अतद्धिते ईपि ईकारे चेति। अत्र

परे विकल्पसे। **चतुरां**—चतुर् शब्दको आम्का आगम हो पाँच वचनोंके परे और 'शि' के परे। **रः संख्यायाः**—रेफान्त संख्यावाची चतुर् शब्दसे पर आम्को नुट्का आगम हो। **नाम्नो**—अनागमज नामके नकारका लोपश् हो रस प्रत्याहारके परे और पदान्तमें धिको छोड़के। **ज्ञोर्ज्ञः**—ज् और ञ्के संयोग होने पर 'ज्ञ' होना है। **श्वादेः**—श्वन्, युवन्, मघवन् शब्द सम्बन्धी वकारको उकार हो शसादि स्वरके परे और तद्धित प्रत्यय भिन्न ईप् तथा ईकारके

पथिन्शब्दस्य भेदः—

इतोऽत् पञ्चसु ॥ १७ ॥ (१) पथ्यादीनामिकारस्याकारादेशो भवति पञ्चसु स्यादिषु परेषु ॥ १७ ॥

थो नुट् ॥ १८ ॥ पथ्यादीनां थकारस्य नुडागमो भवति पञ्चसु स्यादिषु परेषु । पन्थन् सि इति स्थिते ॥ १८ ॥

आ सौ ॥ १९ ॥ पथ्यादीनां टेरात्वं भवति (२) सौ परे । पन्थाः पन्थानौ पन्थानः । आत्वविधानान्न सेर्लोपः । हे पन्थाः । पन्थानम् पन्थानौ ॥

पथां टेः ॥ २० ॥ पथ्यादीनां टेर्लोपो भवति शसादौ स्वरे परे । पथः । पथा पथिभ्याम् पथिभिः । इत्यादि । एवं मथिन्ऋभुक्षिन् शब्दौ ॥ २ ॥

अनुवृत्त्यापकर्षेण वा अस्यार्थस्य असंभवेऽपि. तन्त्रान्तरोक्तनिषेधमादाय, एतादृशव्याख्याने लक्ष्यैकचक्षुष्कस्याचार्यस्य न दोषः । तेन मघोनः इदं माघवनम् । यौवनम् । अत्र औत्वं न । मतुबन्तमघवच्छब्दस्य तु मघवतः मघवता इत्यादि भिन्नान्येव रूपाणि । मघवती । युवती ।

(१) पथ्यादीनामिति । अत्रादिपदेन मथिन्, ऋभुक्षिन्, शब्दयोर्ग्रहणम् । (२) आत्वं भवतीति । अत्र नकारस्थाने जायमानस्य आकारस्य अनुनासिकत्वे प्राप्तेऽपि आ—आ इति प्रश्लिष्य शुद्ध एवाकारो भवतीति बोध्यम् ।

परे । **इतोऽत्**—पुंल्लिङ्गमे स्यादि पाँच वचन परे और अन्यत्र शिके परे होनेसे पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्दोंके इकारको अकार आदेश हो । **थो नुट्**—पथिन् और मथिन् शब्दो के थकारको नुट् हो पुल्लिङ्गमे स्यादि पाँच वचनके परे और शिके परे ।

नोट—उपर्युक्त १७–१८ सूत्रोंमें 'पुंसि' और 'शि' का भी अनुवर्तन होता है । अतएव १७ वें सूत्रमें पुसि कहनेसे स्त्रीलिङ्गमे 'सुपथी' यहाँपर अत्व नही हुआ और 'शि' कहनेसे 'सुपन्थानि' मे अत्व सिद्ध हुआ । एवं १८ वाँ सूत्रमे 'पुंसि' कहनेसे नपुंसक लिङ्गमे 'सुपथि' यहाँपर नुट् नही हुआ 'शि' कहनेसे 'सुपन्थानि' मे नुट सिद्ध हुआ ।

आ सौ—पथिन्, मथिन् और ऋभुक्षिन् शब्दोंके टिको आत्व हो सि विभक्तिके परे । **पथां टेः**—पथ्यादि शब्दोंके टिका लोप हो शसादि स्वरके परे ।

दण्डिन्शब्दस्य भेदः—

इनां शौ सौ ॥ २१ ॥ इन् हन् पूषन् अर्यमन् इत्येतेषां शौ सौ चाघौ परे उपधाया दीर्घो भवति । नलोपसिलोपौ । दण्डी दण्डिनौ दण्डिनः । हे दण्डिन् । दण्डिनम् दण्डिनौ दण्डिनः । दण्डिना दण्डिभ्याम् दण्डिभिः । इत्यादि । एवं ब्रह्महन्शब्दः । ब्रह्महा ब्रह्महणौ ब्रह्महणः । हे ब्रह्महन् हे ब्रह्महणौ हे ब्रह्महणः । ब्रह्महणम् ब्रह्महणौ । शसादौ स्वकारलोपः ॥ २१ ॥

हनो घ्ने ॥ २२ ॥ हन्तेर्धातोर्हकारस्य घकारो भवति नकारे ञ्णिति च परे । घसंयोगो णत्वनिषेधार्थः ब्रह्मघ्नः । ब्रह्मघ्ना ब्रह्महभ्याम् ब्रह्महभिः । इत्यादि । पूषा पूषणौ पूषणः । हे पूषन् हे पूषणौ हे पूषणः । पूषणम् पूषणौ ।२२।

षणो ष्णः ॥ २३ ॥ षकारणकारसंयोगे ष्णो भवति शसादौ स्वरे परे । **पूषन्शब्दस्य शसादौ स्वरे परे वा टेर्लोपः *।** पूष्णः । पूष्णा पूषभ्याम् पूषभिः । पूष्णोः । (**ङौ टिलोपो वेति केचित्**) पूष्णि पूषणि पूषि पूष्णाः पूषसु । अर्यम्णः अर्यम्णा अर्यमभ्याम् । इत्यादि ॥ २६ ॥

संख्याशब्दाः पञ्चन्प्रभृतयो बहुवचनान्तास्त्रिषु लिङ्गेषु सरूपाः । पञ्चन् जस् इति स्थिते—

जश्शसोर्लुक् ॥ २४ ॥ षकारनकारान्तसंख्यायाः परयोर्जश्शसोर्लुक् भवति । प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणम् । लुकि न (१)तन्निमित्तम् । पञ्च । पञ्च । पञ्चभिः पञ्चभ्यः ॥ २४ ॥

ष्णः ॥ २५ ॥ षकारनकारान्तसंख्यायाः परस्यामो नुडागमो भवति ।

---

(१) तन्निमित्तं कार्यं न कर्तव्यमित्यर्थः । पाणनीयतन्त्रे च 'न लुमताङ्गस्ये'त्यनेन प्रत्ययलक्षणमाश्रित्य प्राप्तस्याङ्गकार्यस्य निषेधः कृतः ।

इना शौ—इन्, हन्, पूषन् और अर्यमन् शब्दोंके उपधाका दीर्घ हो शि और सिके परे । **हनो घ्नेः**—हन् धातुके हकारको घकार हो नकारके परे और ञित्-णित् प्रत्ययके परे । **षणो**—ष्-ण्के संयोगमें ष्ण हो शसादि स्वरके परे । **पूषन्**—पूषन् शब्दके टिका लोप हो शसादि स्वरके परे विकल्पसे । **ङौ टि**—किसीके मतसे ङिके परे पूषन् शब्दके टिका लोप विकल्पसे हो । **जश्शसोः**—षकारान्त, नकारान्त संख्यासे पर जस् और शस् विभक्तियोंको लुक् हो । **ष्णः**–

'नोपधायाः' इति दीर्घः। 'नाम्नो नो लोपशधौ'। पञ्चानाम् पञ्चसु। एवं सप्तन् नवन् दशन् प्रभृतयः ॥ २५ ॥

अष्टन्शब्दस्य भेदः—

अष्टनो डौ वा ॥ २६ ॥ अष्टन्शब्दात्परयोर्जश्शसोर्वा डौ भवति (१)। डित्वाट्टिलोपः। अष्टौ अष्टौ अष्ट अष्ट ॥ २६ ॥

वाऽऽसु ॥ २७ ॥ वा आ आसु इति छेदः। अष्टन (२)आसु परासु विभक्तिषु वा टेरात्वं भवति। अष्टभिः अष्टाभिः। अष्टभ्यः अष्टाभ्यः। अष्टानाम्। अष्टसु अष्टासु ॥ २७ ॥ मकारान्त इदम्शब्दः—

इदमोऽयं पुंसि ॥ २८ ॥ इदम्शब्दस्य पुंसि विषये अयमादेशो भवति सिसहितस्य। अयम्। द्विवचनादौ 'त्यदादेष्टेरः स्यादौ' इत्यकारः। इदम् औ इति स्थिते ॥ २८ ॥

दस्य मः ॥ २९ ॥ इदमः दकारस्य मत्वं भवति स्यादौ परे। इमौ इमे। सर्वादित्वात् 'जसी' इनीकारः। त्यदादीनां घेरभावः। इमम् इमौ इमान् ॥

अन टौसोः ॥३०॥ इदमोऽनादेशो भवति टौसोः परयोः। अनेन ॥३०॥

स्भ्यः ॥३१॥ इदमः सकारे भकारे च परे (३) अकारो भवति कृत्स्नस्य। 'अद्भि' इत्यात्वम्। आभ्याम् ॥ ३१ ॥

---

(१)अष्टनो डौ वा भवतीति। गौणत्वेऽपि आत्वं जश्शसोर्डौत्वं वेत्यके तेन 'प्रियाष्टनो राजवत्सर्वं हाहावच्चापरं हलि' इति कथयन्ति। (२) आसु इति। तृतीयैकवचनस्य टा, सप्तमी बहुवचनस्य सु, अनयोः। प्रत्याहारः टकारं वर्जयित्वा आ इत्युपादानाम्। (३) अकारो भवतीति। स च शित् 'गुरुशिच्च

षकारान्त संख्यासे पर आम्को नुट्का आगम हो। **अष्टनो**—अष्टन् शब्दसे पर जस्–शस् विभक्तिका डौ हो विकल्पसे। **वाऽऽसु**—तृतीयादि विभक्तिके परे अष्टन् शब्दको आत्व हो विकल्पसे। **इदमोऽयं**—पुंलिङ्गमें सि सहित इदम् शब्दको अयम् आदेश हो। **दस्य मः**—त्यदादिके दकारको मकार हो स्यादि विभक्तिके परे। **अन टौसोः**—इदम् शब्दको अन आदेश हो टा और ओस विभक्तिके परे। **स्भ्यः**—इदम् शब्दको अकार आदेश हो

भिस्भिस् ॥ ३२ ॥ इदमदसोर्भिस् भिसेव भवति न तु भकारस्याकारः । 'ए स्मि बहुत्वे' एभिः । अस्मै आभ्याम् एभ्यः । अस्मात् आभ्याम् एभ्यः । अस्य अनयोः (एनयोः) (१) एषाम् । अस्मिन् अनयोः एषु इत्यादि (२)

किम्शब्दस्य 'त्यदादेष्टेरः स्यादौ' इत्यकारे कृते सर्वशब्दवद्रूपम् । कः कौ के । कम कौ कान् इत्यादि ।

घकारान्तस्तत्त्वबुधशब्दः । तस्य रमे पदान्ते च 'आदिजबानाम्' इति भकारः । 'वाऽवसाने' तत्त्वभुत् तत्त्वभुद् तत्त्वबुधौ तत्त्वबुधः । हे तत्त्वभुत् हे तत्त्वभुद् । तत्त्वबुधम् तत्त्वबुधौ तत्त्वबुधः । तत्त्वबुधा तत्त्वभुद्भ्याम् तत्त्व-भुद्भिः इत्यादि । एवं मर्मवित् ॥ ३२ ॥

जकारान्तः सम्राज्शब्दः ॥

छशषराजादेः षः ॥ ३३ ॥ छकारान्तस्य षकारान्तस्य च राज् यज् मृज् मृज् भ्राजादेश्च षकारो भवति धातोर्झसे परे नाम्नश्च रसे पदान्ते च ॥३३॥

सर्वस्य' इत्यनेन सर्वस्य स्थाने भवतीत्यर्थः (१) **पाणिनीये 'द्वितीयाटौस्स्वेनः' इत्यनेन इदम् एनादेशो भवति ।** (२) **'इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम् । अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात् ॥'**

सकार-भकारादि विभक्तिके परे । **भिस्भिस्**—इदम् और अदम् शब्द-सम्बन्धी भिसके स्थानमे भिस् ही आदेश हो ।

नोट—पुस्तकान्तरमें यहाँपर (**इदमेतदोरन्वादेशे द्वितीयाटौस्स्वेनो 'वा' वक्तव्यः**) ऐसा वार्तिक है (आगे ३५ वाँ सूत्र देखो) इसका अर्थ यह है कि द्वितीया विभक्ति और टा, ओस् विभक्ति परमे हो तो इदम् और एतद् शब्दको अन्वादेशमे विकल्पसे एन आदेश हो । अत एव 'एनम्, एनौ, एनान् । **अनेन;** एनयोः' ये रूप भी सिद्ध होते है । **'किञ्चत् कार्यं विधातुं पुनरुपादानमन्वा-देशः'** । यथा **'अनेन व्याकरणमधीतम्, एनं छन्दोऽध्यापय ।'** (किसी कार्यमें प्रवृत्त व्यक्तिको कार्यान्तरने प्रवृत्त करना अन्वादेश कहलाता है । जैसे—इसने व्याकरण पढा है इसे अब वेद पढाओ)

छशषराजादेः—छकारान्त, शकारान्त, षकारान्त और राज्, यज्, मृज्, मृज्, आदिके षकार आदेश हो धातुसे झस और नामसे रस प्रत्याहार पर होनेसे, पदान्तमें ।

षो डः ॥ ३४ ॥ षकारस्य डत्वं भवति धातोर्झसे परे नाम्नश्च रसे पदान्ते च । 'वाऽवसाने' इति टकारो डकारश्च । सम्राट् सम्राड् सम्राजौ सम्राजः । सम्राजम् सम्राजौ सम्राजः । सम्राजा सम्राड्भ्याम् सम्राड्भिः । इत्यादि । एवं विराजादयः ।

दकारान्तास्त्यद्तद्यद्एतद्शब्दाः । एतेषां 'त्यदादेष्टेरः स्यादौ' इति सर्वत्राकारे कृते सर्वशब्दवद्रूपं ज्ञेयम् ॥ ३४ ॥

स्तः ॥ ३५ ॥ त्यदादेस्तकारस्य सौ परे सत्त्वं भवति । स्यः त्यौ त्ये । त्यम् त्यौ त्यान् । सः तौ ते । तम् तौ तान् । यः यौ ये । यम् यौ यान् । एषः एतौ एते । **एतदोऽन्वादेशे द्वितीया टौस्स्वेनो वा वक्तव्यः*** उक्तस्य (१) पुनरुक्तिरन्वादेशः । यथानेन व्याकरणमधीतं एनं छन्दोऽध्यापय । एतम् एनम् एतौ एनौ एतान् एनान् । एतेन एनेन एनाभ्यान् एनैः । एतयोः एनयोः एतेषाम् । एतस्मिन् एतयोः एनयोः एतेषु । छकारान्तस्तत्त्वप्राछ्शब्दः । तत्त्वप्राट् तत्त्वप्राड् तत्त्वप्राछौ तत्त्वप्राछः इत्यादि । थकारान्तोऽग्निमथ्शब्दः । अग्निमत् अग्निमद् अग्निमथौ अग्निमथः । अग्निमथा अग्निमद्भ्याम् इत्यादि ॥ ३५ ॥

नो लोपः ॥ ३६ ॥ धातोर्हसान्तस्योपधाभूतस्य नस्य लोपो भवति ॥ **अञ्चे पञ्चसु नुम् वक्तव्यः*** । प्रत्यन् च इति स्थिते–'स्तोः श्चुभिः श्चुः' इति चुत्वेनात्र ञकारः । संयोगान्तस्य लोपः ॥ ३६ ॥

---

(१) **किंचित् कार्यं विधातुमुपात्तस्य कार्यान्तरविधानाय पुनस्तस्यैव ग्रहणम्–पुनरुक्तिः ।**

नोट—षकारको षकार विधान करनेसे 'द्वेष्टि' में 'षो डः' सूत्रसे डत्व नहीं हुआ ।

षो डः—षकारको डकार हो, धातुसे पर झस और नामसे पर रस प्रत्याहार होनेसे, पदान्तमें । **स्तः**—त्यदादिके तकारको सकार आदेश हो सि विभक्तिके परे । **एतदोऽन्वादेशे**—('इदमेतदोरन्वादेशे' ऐसा पाठ समीचीन है । ३२ वां सूत्रका 'नोट' देखो) नो लोपः—हसान्त धातुके उपधाभूत नकारका लोप हो । **अञ्चेः**—प्रत्ययंक अञ्च् धातुको नुम् हो (पुंल्लिङ्गमे) ।

चोः कुः ॥३७॥ चवर्गस्य कवर्गादेशो भवति धातोर्झसे परे नाम्नश्च रसे पदान्ते च यथासंख्येन । प्रत्यङ प्रत्यञ्चौ प्रत्यञ्चः । प्रत्यञ्चम् प्रत्यञ्चौ ॥३७॥

अञ्चेरलोपो दीर्घश्च ॥ ३८ ॥ अञ्चेर्धातोरकारस्य लोपो भवति पूर्वस्य च दीर्घः शसादौ स्वरे तद्धिते प्रत्यये ईपि ईकारे च । 'निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभावः' । प्रतीचः प्रतीचा प्रत्यग्भ्याम् प्रत्यग्भिः । प्रत्यक्षु । एवं तिर्यच् प्रभृतयः । तिर्यङ् तिर्यञ्चौ तिर्यञ्चः । तिर्यञ्चम् तिर्यञ्चौ ॥ ३८ ॥

तिरश्चादयः ॥ ३९ ॥ (१) तिरश्चादयो निपात्यन्ते शसादौ स्वरे परे तद्धिते ईपि ईकारे च । तिरश्चः । तिरश्चा तिर्यग्भ्यां तिर्यग्भिः । तिर्यक्षु । उदङ । उदीचः उदीचा । सम्यङ । समीचः समीचा । सध्र्यङ । सध्रीचः । सध्रीचा । अदद्र्यङ । इत्यादि ॥३९॥ नकारान्त उकारानुबन्धो महच्छब्दः—

---

(१) तिरश्चादयो निपात्यन्ते इति । अत्रायमभिप्रायः—अलुप्ताऽकारनकारके अञ्चतौ परे तिरस्शब्दस्य 'तिरि' इत्यादेशः । तेन आदितः पञ्चसु हसादिषु च विभक्तिषु तिर्यङ्, तिर्यग्भ्यामित्यादीनि रूपाणि भवन्ति । शस्प्रभृतिषु च विभक्तिषु तिर्यङ्, तिर्यग्भ्यामित्यादीनि रूपाणि भवन्ति । शस्प्रभृतिषु तिरश्चः, तिरश्चा, इत्यादि । अत्र सान्तत्वात्पूर्वदीर्घस्याप्राप्तिः । एतत्सूत्रस्याऽऽदिपदेन 'उद्' शब्दस्य लुप्तनकाराकारके अञ्चतौ परे 'उदी' इत्यादेशः । सहशब्दस्य सध्रि इत्यादेशः । सम् शब्दस्य 'समि' इत्यादेशः । विश्वक्—देव—सर्वनाम शब्दानां टेः 'अद्रि' आदेशः । विश्वद्र्यङ्, देवद्र्यङ्, अदद्र्यङ् इत्यादीनि रूपाणि ज्ञेयानि । अदस् शब्दस्य तु अद्र्यादेशपक्षे मुत्वादि कार्ये विशेषः । परतः केचिदिच्छन्ति केचिदिच्छन्ति पूर्वतः उभयोः केचिदिच्छन्ति केचिदिच्छन्ति नोभयोः ॥ १ ॥ अनयैव रीत्या प्राञ्चादिशब्देषु विशेषो बोध्यः ।

चोः कुः—पदान्त चवर्गको कवर्ग हो, धातुसे झस और नामसे रस प्रत्याहार पर होनेसे । **अञ्चेरलोपो**—लुप्तनकारक अञ्च धातुके अकारका लोप हो और पूर्वका दीर्घ हो, शसादि स्वर और तद्धित ईप् और ईकारके परे । **तिरश्चादयः**—तिर्यच् उदच् सध्र्यच् सम्यच् शब्दोंके स्थानमे यथाक्रमसे तिरश्च, उदीच, सध्रीच, समीचा आदि आदेश निपातन हो शसादि स्वर और

(१) **ञितो नुम्** ॥ ४० ॥ उकारेत्संज्ञकस्य ऋकारेत्संज्ञकस्य च नुमागमो भवति पुंसि पञ्चसु परेषु ॥ ४० ॥

न्सम्महतो धौ दीर्घः शौ च ॥ ४१ ॥ न्सन्तस्याप्शब्दस्य महच्छब्दस्य च उपधाया दीर्घो भवति पञ्चसु धिवर्जितेषु शौ(२)च परे। महान् (३) महान्तौ महान्तः। हे महन्। महान्तं महान्तौ महत। महता महद्भ्याम् महद्भिः। इत्यादि। एवमग्निचिन् शब्दः ॥ ४१ ॥ उकारानुबन्धो भवच्छब्दः—

अत्वसोः सौ ॥ ४२ ॥ अत्वन्तस्यासन्तस्य च दीर्घो भवति धिवर्जितेषु सौ च परे। भवान् भवन्तौ भवन्तः। भवन्तम् भवन्तौ भवतः। भवता भवद्भ्याम् इत्यादि ॥ ऋकारानुबन्धस्य पचतृशब्दस्य नुमागम एव, न दीर्घः। पचन् पचन्तौ पचन्तः। इत्यादि। एवं, ऋकारानुबन्धो भवच्छब्दोऽपि। पठन् पठन्तौ पठन्तः। पठन्तम् पठन्तौ। शकारान्तो विश्शब्दः। 'छशषराजादेः ष' इति षत्वम्। 'षो डः' इति षकारस्य डत्वं च। 'वाऽवसाने' चपा जबाश्च। विट् विड् विशौ विशः। इत्यादि। षकारान्तः षष्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तस्त्रिषु सरूपः। 'जश्शसोर्लुक्'। षो डः। षट् षड् षड्भिः षड्भ्यः २। 'ष्णः' इति नुडागमः। षड् नाम् इति स्थिते ॥ ४२ ॥

ड्णः ॥ ४३ ॥ षान्तसंख्यासम्बन्धिनो डकारस्य णत्वं भवति नामि परे। 'ष्टुभिः ष्टुः' षण्णाम् षट्सु। 'क्वचिदपदान्ते पदान्तताश्रयणीया' ॥ ४३ ॥

---

(१) उश्च ऋ ऋतो इत्संज्ञकौ यस्य, तस्माच्छब्दस्वरूपादित्यर्थः। (२) शौचेति। जश्शसोः शिरिति नपुंसके विहितं स्यादिपञ्चविभक्तिनिमित्तककार्यं नपुंसके शावेव भवति नान्यत्रेति भावः। (३) महानिति। नुमः प्राक् दीर्घः, ततो नुम्, पूर्वं नुमि ततो दीर्घप्राप्तया रूपासिद्धिः स्यात्।

तद्धित ईप् और ईकारके परे। **ञितो**—उकारेत्संज्ञक और ऋकारेत्संज्ञकको नुमागम हो स्यादि पञ्च वचनोंके परे पुंल्लिङ्गमे। **न्सम्महतो**—नकारान्त सकारान्त तथा अप् और महत् शब्दके उपधाको दीर्घ हो स्यादि पाँच वचनोंके परे और धिको छोड़कर शिके परे। **अत्वसोः**—अत्वन्त (उकारानुबन्ध) और असन्तके उपधाको दीर्घ हो धिको छोड़ सि विभक्तिके परे। **ड्णः**—संख्यासम्बन्धी डकारको णकार हो नुट् सहित आम विभक्तिके परे।

दोषां रः ॥ ४४ ॥ दोष्सजुष्आशिष्हविष्प्रभृतीनां षकारस्य रेफो भवति रसे पदान्ते च । दोः दोषौ दोषः । दोषम् दोषौ । **दोष्शब्दस्य शसादौ स्वरे परे नान्तता वा वक्तव्या*** (१) । दोषः दोष्णः । दोषा । दोष्णा । दोर्भ्याम् दोषभ्याम् इत्यादि । सजूः सजुषौ सजुषः ॥ **सजुषाशिषो रसे पदान्ते च दीर्घो वक्तव्यः*** । सजूर्भ्यामित्यादि ॥ ४४ ॥

पुंसोऽसुङ् ॥ ४५ ॥ पुंस्शब्दस्य पञ्चसु परेष्वसुङादेशो भवति । ङकारोऽन्त्यादेशार्थः । उकारो नुम्विधानार्थः ॥ ४५ ॥

स्वरे मः ॥ ४६ ॥ अनुस्वारस्य मकारो भवति स्वरे परे । पुमस् स् इति स्थिते 'वृनो नुम्', 'नुसुम्महतोऽधौ दीर्घः शौ च', 'संयोगान्तस्य लोपः' । पुमान् पुमांसौ पुमांसः । हे पुमन् । पुमांसम् पुमांसौ पुंसः । पुंसा पुंभ्याम् पुंभिः । इत्यादि ॥ ४६ ॥

असम्भवे पुंसः कक् सौ ॥ ४७ ॥ वेदान्तैकवेद्यस्यात्मनो बहुत्वासंभवेऽर्थे वाच्ये सति पुंस्शब्दस्य सुपि परे कगागमो भवति (२) ॥ ४७ ॥

---

(१) नान्तता वा वक्तव्येति । दोष्शब्दस्य 'दोषन्' इत्यादेशो वा शस्प्रभृतिस्वरादिविभक्तौ परतः । अकारलोपश्च । णत्वम् 'दोष्णः' इत्यादि । अत्र सप्तम्येकवचने परे विकल्पेनाकारलोपः । दोष्णि दोषणि । एवं नपुंसके प्रथमाद्वितीयाद्विवचनेऽपि । ननु कथं तर्हि 'वामेन दोषेण गृहीतकेशा नीता सभायां खलु याज्ञसेनी' इति अत्राकारान्तोऽन्य एव दोषशब्द इत्याहुः ।

(२) कगागमो भवतीति । पाणिनीयशास्त्रविरुद्धमिदम् । पाणिनीयास्तु कगागममनिच्छन्तोऽत्र 'पुंसु' इत्येव रूपं साधयन्ति ।

दोषां—दोष्, सजुष्, आशिष्, हविष्, सर्पिष्, धनुष्, ज्योतिष् आदि शब्दोंके षकारको रेफ हो रस प्रत्याहारके परे, पदान्तमे । **दोष्शब्दस्य**—दोष् शब्दको शसादि स्वरके परे नान्तता विकल्पसे होती है । **सजुषाशिषो**—सजुष् और आशिष् शब्दको रस प्रत्याहार पर होनेसे तथा पदान्तमें ही दीर्घ होता है । **पुंसोऽसुङ्**—पुंस शब्दको असुङ् आदेश हो स्यादि पाँच वचनोंके परे । **स्वरे मः**—अनुस्वारको मकार हो स्वरके परे । **असम्भवे**—वेदान्तैकवेद्य आत्माका बहुत्वरूप असम्भव अर्थ वाच्य होनेपर (वैदिक प्रयोगमें) पुंस् शब्दको कक्का आगम हो सुप्के परे ।

स्कोराद्योश्च ।। ४८ ।। संयोगाद्योः सकारककारयोर्लोपो भवति धातोर्झसे परे नाम्नश्च रसे पदान्ते च । पुंक्षु ,। ४८ ।। विद्वस्शब्दः । विद्वान् विद्वांसौ विद्वांसः । विद्वांसम् विद्वांसौ—

वसोर्व उः ।। ४९ ।। वसोः सम्बन्धिनो वकार उत्वं प्राप्नोति शसादौ स्वरे परे, तद्धिते ईपि ईकारे च । विदुषः विदुषा । 'वसां रसे' विद्वद्भ्याम् विद्वद्भिः । विद्वत्सु इत्यादि । सुवचस्शब्दस्य 'अत्वसोः सौ' इति दीर्घः । सुवचाः सुवचसौ सुवचसः । हे सुवचः । सुवचसम् सुवचसौ सुवचसः । सुवचसा । स्रोर्विसर्गः' 'हबे' उत्वम् । 'उ ओ' । सुवचोभ्याम् सुवचोभिः । एवं चन्द्रमस्शब्दः ।। ४९ ।। उशनस्शब्दस्य विशेषः—

उशनसाम् ।।५०।। उशनस् पुरुदंसस् अनेहस् इत्येतेषां सेरधेर्डा भवति । डकारष्टिलोपार्थः । उशना उशनसौ उशनसः ।। **उशनसो धौ सान्तता नान्तता अदन्तता च वक्तव्या*** हे उशनः हे उशनन् हे उशन (१) ।। ५० ।। अदस्-शब्दस्य विशेषः । 'त्यदादेष्टेरः' इति सर्वत्राकारः । अदस् सि इति स्थिते—

सौ सः ।। ५१ ।। अदसो दकारस्य सौ परे सत्वं भवति ।। ५१ ।।

सेरौ ।। ५२ ।। अदसः सेरौकारादेशो भवति । असौ । द्विवचने अदस् औ इति स्थिते दस्य मः ।। ५२ ।।

---

(१) सम्बोधने तूशनसस्त्रिरूपं सान्तं तथा नान्तमथाप्यदन्तम् इति । 'उशना भार्गवः कविः' इत्यमरः ।

नोट—आत्माका बहुत्व इसलिये असम्भव है कि वेदान्तमें आत्मा (ब्रह्म) को एक ही माना गया है—**'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन'** इत्यादि ।

स्कोराद्योश्च—संयोगादि सकार और ककारका लोप हो धातुसे झस और नामसे रस प्रत्याहारके परे, पदान्तमें । **वसोर्व उः**—वसुसम्बन्धी वकारको उत्व हो शसादि स्वरके परे और तद्धितसे ईप् तथा ईकारसे परे । **उशन-साम्**—उशनस्, पुरुदंशस् और अनेहस् शब्दोंके 'धि' को छोड़कर 'सि' को डा आदेश हो । **उशनसो**—सम्बोधनमे उशनस् शब्द सान्त, नान्त और अदन्त भी होता है । **सौ सः**—अदस् शब्दसम्बन्धी दकारको सकार हो सिके परे । **सेरौ**—अदस् शब्दसम्बन्धी सिको औकार आदेश हो ।

मादू ॥ ५३ ॥ उश्च ऊश्च ऊ। अदसो मकारात्परस्य ह्रस्वस्य ह्रस्व उकारो भवति दीर्घस्य **च** दीर्घ ऊकारो भवनि। अमू बहुवचने सर्वादित्वात् जसी'। 'अ इ ए' अमे इति स्थिते ॥ ५३ ॥

एरी बहुत्वे ॥ ५४ ॥ बहुत्वे सत्यदस एकारस्य ईकारो भवति। अमी। अमुम् अमू अमून्। मत्वे उत्वे **च** कृते 'टाना स्त्रियाम्'। अमुना। द्विवचने 'अद्भि' इत्यात्वं पश्चादूकारः अमूभ्याम् ॥ ५४ ॥

भिस्भिस् ॥५५॥ इदमदसोर्भिस् भिसेव भवनि, न तु मकारस्याकारः। अमीभिः। अमुष्मै अमूभ्याम् अमीभ्यः। अमुष्मात् अमूभ्याम्। अमीभ्यः। अमुष्य। ओसि एत्वे अयादेशे **च** कृते पश्चादुकारः। अमुयोः अमीषाम्। अमुष्मिन् अमुयोः अमीषु ॥ ५५ ॥

(१) **सामान्ये अदसः कः स्यादिवच्च** ॥ ५६ ॥ अमुकः अमुकौ अमुके इत्यादि सर्ववत् ॥ ५६ ॥

इति हसान्ताः पुंल्लिङ्गाः

—*—

अथ हसान्ताः स्त्रीलिङ्गाः

तत्र हकारान्त उपानह् शब्दः।

नहो धः ॥ १ ॥ नहो हकारस्य धकारादेशो भवति रसे पदान्ते **च**।

---

(१) **एकस्योच्चारणेन बह्वर्थो यत्र लभ्यते तत्सामान्यम्। न तु न्याय-नयपारिभाषिकम्।**

मादू—अदस् शब्दसम्बन्धी मकारसे पर ह्रस्वको ह्रस्व और दीर्घको दीर्घ ऊकार आदेश हो। **एरी**—अदस् शब्दसम्बन्धी मकारसे पर एकारको ईकार आदेश हो, बहुत्व अर्थमें।

भिस्भिस्—(पीछे ३२ वाँ सूत्र देखो) **सामान्ये अदसः**—सामान्य अर्थमें अदस् शब्दसे कप्रत्यय हो और वह स्यादिवत् हो अर्थात् स्यादिके परे जो कार्य होता हो वह कप्रत्ययके परे भी हो।

इति हसान्ताः पुंल्लिगाः

—: *:०:* :—

नहो धः—नह् धातुके हकारको धकार हो रस प्रत्याहारके परे, पदान्तमें।

'वाऽवसाने' धस्य तत्वं दत्वं च। उपानत् उपानद् उपानहौ उपानहः। हे उपानत्। उपानहम् उपानहौ उपानहः। उपानहा उपानद्भ्याम् उपानद्भिः। 'सखे चपा झसानाम्' उपानत्सु ॥ १ ॥ वकारान्तो दिव्शब्दः—

दिव औ सौ ॥ २ ॥ दिवो वकारस्य औकारादेशो भवति सौ परे। द्यौः दिवौ दिवः। हे द्यौः ॥ २ ॥ दिव् अम् इति स्थिते—

वाऽमि ॥ ३ ॥ दिवो वकारस्य अमि परे वा अत्वं भवति। द्याम् दिवम् दिवौ दिवः। दिवा ॥ ३ ॥

उ रसे ॥ ४ ॥ दिवो वकारस्य रसे परे उकारो भवति। द्युभ्याम् द्युभिः द्युषु इत्यादि ॥ ४ ॥ रेफान्तश्चतुर्शब्द नित्यं बहुवचनान्तः—

त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृवत् ॥ ५ ॥ स्त्रियां वर्तमानयोस्त्रिचतुर्शब्दयोस्तिसृचतसृ इत्येतावादेशौ भवतो विभक्तौ परतः। ऋकारस्य ऋकारवत्। ततः 'स्तुरार्' इत्यार् न भवति। ऋकारवत्त्वात्। किन्तु 'ऋग्म्' भवति। तिस्रः तिस्रः तिसृभिः तिसृभ्यः ॥ ५ ॥

न नामि दीर्घः ॥ ६ ॥ तिसृ चतसृ इत्येतयोर्दीर्घो न भवति नामि परे। तिसृणाम्। **छन्दसि वा*** छन्दसि तु भवति। तिसृणाम् तिसृषु। एवं चतसृशब्दः ॥ ६ ॥ गिर्शब्दस्य भेदः—

र्वोः विहसे ॥ ७ ॥ धातोरिकारोकारयोर्दीर्घो भवति रेफवकारयोर्हसपरयोः पदान्ते च। गीः गिरौ गिरः। हे गीः गिरम् गिरौ गिरः। गिरा गीर्भ्याम् गीर्भिः। गीर्षु। एवं धूः धुरौ धुरः। हे धूः। पूः पुरौ पुरः। हे पूः। पुरा पूर्भ्याम् पूर्भिः पूर्षु। धकारान्तः समिध्शब्दः। 'वावसाने' समित्। समिद् समिधौ समिधः। हे समित् हे समिद्। समिद्भ्याम् समिद्भिः। समित्सु। भकारान्तः ककुभ् शब्दः। ककुप् ककुब् ककुभौ ककुभः। हे ककुप् हे ककुब्

दिव औ—दिवके वकारको औकार आदेश हो सि विभक्तिके परे। **वाऽमि**—दिवके वकार को अकार आदेश हो अम्के परे विकल्पसे। **उ रसे**—दिवके वकारको उकार आदेश हो रसके परे। **त्रिचतुरोः**—स्त्रीलिङ्गमे वर्तमान त्रिशब्द और चतुर् शब्दको यथाक्रमसे तिसृ, चतसृ आदेश हो विभक्तिके परे। **न नामि**—स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान तिसृ, चतसृ शब्द को नुट्सहित आम्के परे दीर्घ नहीं हो। **छन्दसि वा**—वेदमें तिसृ, चतसृ शब्दको नाम के परे विकल्प से दीर्घ हो। **र्वोः विहसे**—धातुसम्बन्धी इकार, उकारको दीर्घ हो रेफ और

इत्यदि। दकारान्तास्त्यद्तद्यद्एतत् शब्दाः। 'स्यः' त्यादादेस्तकारस्य सत्वं भवति सौ परे। इति सकारः। 'त्यदादेष्टेर. स्यादौ' इति सर्वत्राकारः 'आब्नः स्त्रियाम्' इत्याप्। स्या त्ये त्याः (१)। एताम्-एनाम् एते-एने एनाः। एवं किम् शब्दोऽपि। का के काः॥ ७॥

इयं स्त्रियाम् ॥ ८॥ इदम् शब्दस्य स्त्रियामियं भवति-सौ परे, सिसहितस्य। इयम् इमे इमाः। इमाम् इमे इमाः। अनया आभ्याम् आभिः। अस्यै आभ्याम् आभ्यः। इत्यादिः॥ ८॥

चकारान्तस्त्वच्शब्दः 'चोः कुः' इति कुत्वम्। त्वक् त्वग् त्वचौ त्वचः। त्वग्भ्याम् त्वक्षु। हे त्वक्। एवं ऋच्वाच्प्रभृतयः (२)।

अप्शब्दो नित्यं बहुवचनान्तः। अप् अस् इति स्थिते। 'न्सम्महतः' इति दीर्घः। आपः। द्वितीयाबहुवचने पञ्चस्विति विशेषणान्न दीर्घः। अपः॥ ८॥

(३) **भिदपाम्** ॥ ९॥ अप्शब्दस्य भकारे परे दत्वं भवति। अद्भिः। अद्भ्यः। अपाम्। अप्सु॥ ९॥ शकारान्तो दिश्शब्दः।

(४) **दिशां कः** ॥१०॥ दिश् दृश् स्पृश् मृश् इत्यादीनां रसे पदान्ते च कत्वं भवति। दिक् दिग् दिशौ दिशः। हे दिग् हे दिग्। दिशम् दिशौ दिशः।

---

(१) स्या त्ये त्याः। त्यच्छब्दस्य छंदस्येव प्रायः प्रयोगः। सच्च त्यच्चाभवत्। केचित्तु सर्वादिगणे त्यदादेः प्राक् त्वच्छब्दं पठन्ति। अत एव 'त्वदधरमधुरमधूनि पिबन्तमिति' जयदेवप्रयोगः सङ्गच्छते। अत्र त्वत्तः अन्यस्य अधरः इत्यर्थो न तु तवाधर इति।

(२) ऋच् वाच् प्रभृतयः एवं तकारान्ता योषित् सरित् तडित् विद्युत् इत्यादयोऽपि बोध्याः। (३) भि सप्तम्यन्तम्। 'द्' इति स्वरूपबोधकम्। अपामिति बहुवचनमपशब्दस्य नित्यं बहुवचनान्तत्वं द्योतनाय। (४) अत्रापि बहुवचनं तत्सदृशानां ग्रहणाय।

वकारके परे। **इयं स्त्रियाम्**—स्त्रीलिंगमे सिसहित इदम् शब्दको इयं आदेश हो सि विभक्तिके परे।

भिदपाम्—अप् शब्दको दत्व हो भकारके परे। **दिशां कः**—दिश्, दृश्, स्पृश्, मृश्, स्रज्, ऋत्विज्, दधृष्, उष्णिह, अञ्चु, युञ्ज् और क्रुञ्च्

दिशा दिग्भ्याम् दिग्भिरित्यादि। षकारान्तस्त्विष्शब्दः। 'षो डः। इति डत्वम्। 'वाऽवसाने' इति टकारः। त्विट् त्विड् त्विषौ त्विषः। त्विषं त्विषौ त्विष.। त्विषा त्विड्भ्याम् त्विड्भिः इत्यादि। आशिष्शब्दः सजुष्-शब्दवत्। आशीः आशिषौ आशिषः। आशीर्भ्याम् आशीष्षु। हे आशीः। स्त्रीलिङ्गस्यादस्शब्दस्य सौ न विशेषः। द्विवचनादौ टेऽत्वे कृते अनन्तरम् 'आवतः स्त्रियाम्' इत्याप्। दीर्घत्वं विभक्तिकार्यं च। पश्चात् 'माद्' इति ह्रस्वस्य ह्रस्व उकारो दीर्घस्य दीर्घ ऊकारश्च। असौ अमू अमूः। अमुम् अमू अमूः। अमुया अमूभ्याम् अमूभिः। अमुष्यै अमूभ्याम् अमूभ्यः। अमुष्या अमूभ्याम् अमूभ्यः। अमुष्याः अमुयोः अमूषाम्। अमुष्याम् अमुयोः अमूषु। **सामान्ये अदसः कः**। अमुका अमुके अमुकाः। इत्यादि। स्त्रीलिङ्गे सर्वा-शब्दवद्रूपं ज्ञेयम्॥ १०॥

इति हसान्ताः स्त्रीलिङ्गाः

—:o:—

अथ हसान्ता नपुंसकलिंगाः

रेफान्तो वार्शब्दः।

नपुंसकात्स्यमोर्लुक्॥ १॥ वा. वारी वारि २। 'अयम्' इति विशेषणात् नुम् न भवति। वारा वार्भ्याम् वार्भिः। वार्षु इत्यादि। चतुर्शब्दे (१)

---

(१) अयं नित्यं बहुवचनान्तः। एकत्वद्वित्वरूपसंख्याधर्मस्याभावादित्यर्थः। गौणत्वे प्रियाश्चत्वारो यस्येति विग्रहे प्रियचतुरी प्रियचतुरी प्रियचत्वारि

शब्दोंको कुत्व हो रस प्रत्याहारके परे पदान्तमे। **सजुष्शब्दवत्—सजुषाशिषो रसे पदान्ते च दीर्घो वक्तव्यः*** (सजुष् और आशिष् शब्दको दीर्घ हो रस प्रत्याहारके परे, पदान्तमें) **सामान्ये**—अदस् शब्दसे सामान्य अर्थमें कप्रत्यय हो।

इति हसान्ताः स्त्रीलिङ्गाः

—:o:—

नपुंसकात्—नपुंसकलिंगसे पर सि और अस् विभक्तिका लुक् हो।

'चतुराम् शौ च' इत्याम्। चत्वारि। चत्वारि। चतुर्भिः। चतुर्भ्यः। चतुर्भ्यः। चतुर्णाम्। चतुर्षु॥

नकारान्तोऽहन्शब्दः।

अह्नः सः॥ २॥ अहन्शब्दस्य नकारस्य सकारो भवति रसे पदान्ते च। 'स्रोर्विसर्गः'। अहः। 'इमौ' वेङ्योः'। अह्नी अहनी अहानि २। अह्ना अहोभ्याम् अहोभिः। अह्ने अहोभ्याम् अहोभ्यः। अह्नः अहोभ्याम् अहोभ्यः। अह्नः अह्नोः अह्नाम्। अह्नि-अहनि अह्नोः अहःसु। **ब्रह्मन्शब्दस्य रसे पदान्ते च नस्य लोपो वक्तव्यः*।** ब्रह्म ब्रह्मणी ब्रह्माणि २। ब्रह्मणा ब्रह्मभ्याम् ब्रह्मभिः इत्यादि। **सम्बोधने धो नपुंसके नलोपो वा वक्तव्यः*** हे ब्रह्म हे ब्रह्मन्। एवं चर्मन्वर्मन्शर्मन्कर्मन्व्योमन्दामन्नामन्प्रभृतयः। **नान्तादन्ताच्छन्दसि ङिश्योर्वा लोपो वक्तव्यः*। छन्दस्यागमजानागमजयोर्लोपालोपौ च वक्तव्यौ*** परमे व्योमन्। सर्वा भूतानि। त्यदादीनां स्यमोर्लुकि कृते टेरत्वं न भवति स्यादाविति विशेषणात्। द्विवचनादौ टेरत्वे कृते सर्वशब्दवद्रूपं ज्ञेयम्। त्यत् त्ये त्यानि। पुनः। त्यत् त्ये त्यानि। त्येन त्याभ्याम् त्यैरित्यादि। एवं तत् ते तानि २। यत् ये यानि २। एतत् एते एतानि २। किम् के कानि २। इदम् इमे इमानि २ तृतीयादौ सर्वत्र पुंवत्। चकारान्तः प्रत्यक्शब्दः। प्रत्यक् प्रत्यग्। 'अञ्चेरलोपो दीर्घश्च'। प्रतीची। 'नुमयमः'। प्रत्यञ्चि। नकारान्तो जगत्शब्दः। जगत् जगती जगन्ति। जगता जगद्भ्याम् जगद्भिः। इत्यादि। महच्छब्दे तु 'न्सम्महतः' इति विशेषणात् सिविषये दीर्घो न। महत् महती महान्ति २। इत्यादि। षकारान्ता हविष्शब्दः सजुष् च। हविः हविषी हवींषि २। इत्यादि। सजूः सजुषी सजूंषि २। एवं सकारान्ताः।

इत्यादि नपुंसके ज्ञेयानि। एवं तिसृ शब्देऽपि प्रियतिसृ प्रियतिसृणी प्रियतिसृणि।

अह्नः सः—अहन् शब्दके नकारको सकार हो रस प्रत्याहारके परे पदान्तमें। **ब्रह्मन्**—ब्रह्मन् शब्दके नकारका लोप हो, रस प्रत्याहारके परे, पदान्तमें। **सम्बोधने**—सम्बोधनमें नपुंसक शब्दोंके नकारका लोप हो विकल्पसे। **नान्ताद्**—वेदमें नकारान्त और अकारान्त शब्दसे पर ङि और शिका विकल्पसे लोप होता है। **छन्दस्यागम**—वेदमें आगमज और, अनागमज

पयः पयसी पयांसि २। पयसा (१) पयोभ्यामित्यादि। अदम्शब्दस्य स्यमोर्लुकि कृते 'स्रोर्विसर्गः'। द्विवचनादौ टेरत्वे कृते मत्वोत्वे। अदः अमू अमूनि २। अमुना अमूभ्याम् अमीभिः। अमुष्मै अमूभ्याम् अमीभ्यः २। अमुष्य अमुयोः अमीषाम्। अमुष्मिन् अमुयोः अमीषु। शेषं पुंलिङ्गवत्। अमुष्माद् अमूभ्याम् अमीभ्यः।

इति हसान्ता नपुंसकलिङ्गाः

—:०:—

अथ युष्मदस्मत्प्रक्रिया

अथ युष्मदस्मदोः स्वरूपं निरूप्यते। तयोश्च वाच्यलिङ्गत्वात् त्रिष्वपि लिङ्गेषु समानं रूपम्।

त्वमहं सिना ॥ १ ॥ युष्मदस्मदोः सिना सहितयोस्त्वमहमित्येतावादेशौ भवतः यथासंख्येन। त्वम् अहम् ॥ १ ॥

युवावौ द्विवचने ॥ २ ॥ युष्मदस्मदोर्द्विवचने परे युवाव इत्येतावादेशौ भवतः ॥

---

(१) पयोभ्यामिति। पयस्-भ्यामिति स्थिते सकारस्य विसर्जनीयतामवलम्ब्य 'हबे' इत्यनेन उत्वे 'उ ओ' इति सूत्रेणौकारः।

दोनोंका लोप और अलोप होता है।

इति हसान्ता नपुंसकलिङ्गाः

—:०:—

युष्मदस्मत्प्रक्रिया—हसान्त नपुंसकलिंग समाप्त होनेके अनन्तर युष्मद् और अस्मद् शब्दका निरूपण करते हैं। युष्मद्-अस्मद् के वाग्व्यवहार कालमें अपने विषयमें लिंगके अभेदमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंगमें समान रूप होता है।

त्वमहं सिना—सि विभक्ति सहित युष्मद्-अस्मद् शब्दको यथाक्रमसे त्वम्-अहम् आदेश हो। **युवावौ**—द्विवचनके परे युष्मद् शब्दको यथाक्रमसे युव-

आमौ ॥३॥ युष्मदस्मदोः पर औ आम् भवति। युवाम्। आवाम् ॥३॥

यूयं वयं जसा ॥ ४ ॥ जसा (१) सहितयोर्युष्मदस्मदोर्यूयं वयं इत्येतावादेशा भवतः। यूयम् वयम् ॥ ४ ॥

त्वन्मदेकत्वे ॥ ५ ॥ युष्मदस्मदोः त्वत् मत् इत्येतावादेशौ भवत एकत्वे गम्यमाने। एकत्वं नाम एकार्थवाचित्वं न त्वेकवचनम् तेन त्वत्पुत्रो मत्पुत्र इत्यादौ त्वन्मदादेशौ भवत एव ॥ ५ ॥

आऽम्स्भौ ॥ ६ ॥ युष्मदस्मदोष्टेरात्वं भवति अमि सकारे भिसि च परे। त्वाम्। माम्। युवाम्। आवाम्। त्यदादेष्टेरत्वे कृते 'शसि' इति दीर्घत्वम्। **सशो नो वक्तव्यः***। युष्मान् अस्मान् ॥६॥ त्वन्मदादेशे कृते–

एटाङ्योः ॥ ७ ॥ युष्मदस्मदोष्टेरेत्वं भवति टा ङि इत्येतयोः परयोः। अयादेशः। त्वया मया। युवाभ्याम् आवाभ्याम्। युष्माभिः अस्माभिः ॥७॥

तुभ्यं मह्यं ङ्या ॥ ८ ॥ ङेसहितयोर्युष्मदस्मदोस्तुभ्यं मह्यमित्येतावादेशौ भवतः। तुभ्यम् मह्यम्। युवाभ्याम् आवाभ्याम् ॥ ८ ॥

भ्यसः शभ्यम् ॥९॥ युष्मदस्मद्भ्यां परस्य भ्यस शभ्यं भवति। शकारो मकारादित्वव्यावृत्त्यर्थः (२)। नेनाऽऽत्वैत्वे न भवतः। युष्मभ्यम् अस्मभ्यम् ॥ ९ ॥

---

(१) जसा सहितयोरिति। सह साकं सार्धं सहितादि योगे तृतीया भवति। स च योगः साक्षाच्छ्रूयमाणोऽपि ग्राह्यः। तेन 'वृद्धो यूना तल्लक्षणश्चेदेव विशेषः' इति पाणिनिप्रयोगोपपत्तिः।

(२) शकारः 'गुरुशिच्च सर्वस्य' इत्यनेन सर्वादेशार्थोऽपि।

आव आदेश हो। **आमौ**–युष्मद् अस्मद् शब्दसे पर औ को आम् हो। **यूयं वयं**–जस् सहित युष्मद्–अस्मद् शब्दको यथाक्रमसे यूय–वय आदेश हो। **त्वन्मदे**–एकार्थवाची युष्मद्-अस्मद् शब्दको त्वत्–मत् आदेश हो। **आऽम्स्भौ**—युष्मद्–अस्मद् शब्दके टिको आत्व हो अम्, सकार और भिस् विभक्तिके परे। **शसो नो**—युष्मद्–अस्मद् शब्दके शस् सम्बन्धी सकारको नकार हो। **एटाङ्योः**—युष्मद्–अस्मद् के टि को एत्व हो टा और ङि विभक्ति के परे। **तुभ्यं मह्यं**—ङे सहित युष्मद्–अस्मद् शब्दको तुभ्य-मह्य आदेश हो। **भ्यसः**–

ङसिभ्यसोः श्तुः ॥ १० ॥ पञ्चम्या ङसिभ्यसो श्तुर्भवति । शकारः सर्वादेशार्थः उकारः सुखोच्चारणार्थः । त्वत् मत् । युवाभ्याम् आवाभ्याम् । युष्मत् अस्मत् ॥ १० ॥

तव मम ङसा ॥ ११ ॥ ङसा सहितयोर्युष्मदस्मदोस्तव मम इत्येतावादेशौ भवतः । तव मम । युवयोः आवयोः ॥ ११ ॥ सर्वादित्वात्सुट् ।

सामाकम् ॥ १२ ॥ युष्मदस्मद्भ्यां परः साम् आकम् भवति । युष्माकम् । अस्माकम् । त्वयि मयि । युवयोः आवयोः । युष्मासु अस्मासु ॥

अथानयोरादेशविशेषविधिः प्रदर्श्यते ।

युष्मदस्मदोः षष्ठीचतुर्थीद्वितीयाभिस्ते मे वां नौ वस्नसौ ॥ १३ ॥ तत्रैकवचनेन सह ते मे भवतः, द्विवचनेन सह वां नौ, बहुवचनेन सह वस्नसौ (१) । उक्तं च—

स्वामी ते स समायातः स्वामी मे सांप्रतं गतः ।
नमस्ते भगवन् ! भूयो देहि मे मोक्षमक्षयम् ॥ १ ॥

---

(१) वस्नसौ इति । विपर्ययविधाने नियमो नेष्यते बुधैः । अतो विभक्तिष्वन्यासु भवन्ति वस्नसादयः ॥ १ ॥

युष्मद्-अस्मद् शब्दसे पर भ्यस्को श्भ्य आदेश हो । **ङसिभ्यसोः**—युष्मद्-अस्मद् से पर ङस् और भ्यस् के स्थानमे श्तु आदेश हो । **तव मम**—ङस् विभक्ति सहित युष्मद्-अस्मद् शब्दको तव-मम आदेश हो । **सामाकम्**—युष्मद्-अस्मद् शब्दसे पर साम को आकम् आदेश हो । **युष्मदस्मदोः**—षष्ठी, चतुर्थी, द्वितीया विभक्ति सहित युष्मद्-अस्मद् शब्दको एकवचनमे एकवचन-सहित ते मे आदेश, द्विवचनमें द्विवचन सहित वां नौ आदेश और बहुवचनमे बहुवचनसहित वस् नस् आदेश होते है ।

नोट—द्वितीयाके एकवचनमें एकवचनसहित युष्मद् शब्दको 'ते' आदेश और अस्मद् शब्द को 'मे' आदेश नही होता, क्योंकि द्वितीयैकवचनमे विशेष रूपसे त्वा मा विधान हो चुका है ।

स्वामी ते—(सः, ते—तव, स्वामी=प्रभुः, समायातः=समागतः । मे=मम, स्वामी, साम्प्रतम्=अधुना, गतः) यहाँ षष्ठ्येकवचनान्त युष्मद् शब्दको 'ते' और अस्मद् शब्दको 'मे' आदेश होता है ।

नमस्ते—(हे भगवन् ! भूयः=पुनरपि, ते=तुभ्यं, नमः । मे=मह्यं

स्वामी वां स जहासोच्चैर्दृष्ट्वा नौ दानयाचनाम् ।
राजा वां दास्यते दानं ज्ञानं नौ मधुसूदनः ॥ २ ॥
देवो वामवताद्विष्णुर्नरकान्नौ जनार्दनः ।
स्वामी वो बलवान् राजा स्वामी नोऽसौ जनार्दनः ॥ ३ ॥
नमो वो ब्रह्मविज्ञेभ्यो ज्ञानं नो दीयतां धनम् ।
सानन्दान् वः प्रपश्यामः पश्यामो नः सुदुःखिनः ॥ ४ ॥'

त्वा माऽमा ॥ १४ ॥ अमा सहितयोर्युष्मदस्मदोस्त्वामादेशौ भवतः ।

पश्यामि त्वा मदालीढं पश्य मा मदभेदकम् ।
पश्यामि त्वा जगत्पूज्यं पश्य मा जगतां पते ॥ १४ ॥

अव्यय=अक्षय, मोक्ष, देहि=प्रयच्छ—अत्र दानार्थे चतुर्थी) यहां चातुर्थ्यंक-वचनान्त युष्मद् शब्दको 'ते' और अस्मद् शब्दको 'मे आदेश होता है ।

स्वामी वां—(सः, वां=युवयोः, नौ=आवयोः, दानस्य याचनां, दृष्ट्वा,—उच्चैः=अतिशयेन, जहास=हसितवान्) यहाँ षष्ठीद्विवचनान्त युष्मद् शब्दको 'वाम्' और अस्मद् शब्दको 'नौ' आदेश होता है ।

राजा वां—(वां=युवाभ्यां, राजा, दानं दास्यते । मधुसूदनः=वासुदेवः, नौ=आवाभ्यां, ज्ञानं दास्यते) यहाँ चतुर्थीद्विवचनान्त युष्मद् शब्दको 'वाम्' और अस्मद् शब्दको 'नौ' आदेश होता है ।

देवो वाम्—(वाम् = युवाम्, विष्णुः, अवतात् = पातु । जनार्दनः = वासुदेवः, नौ = आवाभ्याम्, नरकात्, रक्षतु = पातु) यहाँ द्वितीयाद्विवचनान्त युष्मद् शब्द को 'वाम्' और अस्मद् शब्द को 'नौ' आदेश होता है ।

स्वामी वो—(वः = युष्माकम्, स्वामी, राजा, बलवान्=बलशाली । नः = अस्माकम्, असौ = पुरोवर्ती, जनार्दनः = कृष्णः, स्वामी = प्रभुः) यहाँ षष्ठी बहुवचनान्त युष्मद् शब्द को 'वस्' और अस्मद् शब्दको 'नस्' आदेश होता है ।

नमो वो—यह श्लोक भी षष्ठी बहुवचनका उदाहरण है ।

त्वा माऽमा—अम् सहित युष्मद् शब्दको 'त्वा' और अस्मद् शब्दको 'मा' आदेश हो । **पश्यामि त्वा**—(त्वा=त्वाम्, अहम्, मदालीढं=मदयुक्तं, पश्यामि । मा = माम्, मदभेदकं=मदोत्तारकं, पश्य । त्वा = त्वाम्,

नाऽऽदौ ॥ १५ ॥ पादादौ वर्तमानयोर्युष्मदोर्नैते आदेशा भवन्ति ।

तव ये शत्रवो राजन् ! मम तेऽप्यतिशत्रवः ।
तव मित्राणि यानि स्युर्मम मित्राणि तान्यपि ॥ १ ॥

सम्बोधनपदादग्रे न भवन्ति वसादयः* हे राम तव दासोऽस्मि । हे राम तुभ्यं नमः । अग्ने देवास्मान् पाहि । **एते आदेशा अन्वादेशे नित्यमनन्वादेशे वा वक्तव्याः*** ।

अनन्वादेशे तु त्वं मे मम वा देवोऽसि ।

रुद्रो विश्वेश्वरो देवो युष्माकं कुलदेवता ।
स एव नाथो भगवान् अस्माकं पापनाशनः ॥ १ ॥'

पदादाविति किम् ।

'पान्तु वो नरसिंहस्य नखलाङ्गुलकोटयः ।
हिरण्यकशिपोर्वक्षःक्षेत्रासृक्कर्दमारुणाः ॥ २ ॥'

जगत्पूज्यं, पश्यामि । मा = माम् जगत्पतिं, पश्य) तुमको मैं गर्वित देखता हूँ, तुम मुझको मदोत्तारक देखो (समझो) । तुमको मैं जगत्पूज्य देखता हूँ, तुम मुझको जगत्पति देखो (समझो) ।

नाऽऽदौ—(श्लोकका चतुर्थांश 'पाद' कहलाता है उस) पादके आदिमें वर्तमान युष्मद्–अस्मद् शब्दको उपर्युक्त ते, मे, वां नौ और वम्, नस् आदेश नहीं होते हैं ।

तव ये—(हे राजन् ! ये तव शत्रवः ते ममापि शत्रवः । तव यानि मित्राणि तानि ममापि मित्राणि) यहाँ पादके आदिमें वर्तमान 'तव' को 'ते' और 'मम' को 'मे' आदेश नहीं हुआ ।

सम्बोधन—सम्बोधन पदसे आगे वसादि आदेश नहीं होते हैं । **एते आदेशाः**—उपर्युक्त वां, नौ आदि आदेश अन्वादेशमें नित्य और अनन्वादेशमें विकल्पसे होते हैं । (अन्वादेश का अर्थ देखो) ।

रुद्रो विश्वेश्वरो—यहाँ पदादिमें वर्तमान षष्ठीबहुवचनान्त युष्मद्–अस्मद् शब्द (युष्माकम्–अस्माकम्) को वस–नस् आदेश नहीं होते है ।

पान्तु वो—हिरण्यकशिपुके विशाल वक्षस्थल (छाती) रूपी क्षेत्र (खेत) को विदीर्ण करने पर निकले हुए रुधिरसे लाल नरसिंह भगवान्के

चादिभिश्च ॥ १६ ॥ चादिभिरपि योगे नैते आदेशा भवन्ति ।

'तव चायं प्रभुर्विष्णुर्मम चायं तथैव च ।

इनि षड्लिङ्गप्रकरणं समाप्तम् ।

—: ❋:०:❋ :—

अथ अव्ययानि

चादिर्निपातः ॥ १ ॥ चादिगणो निपातसंज्ञको भवति । च वा ह अह एव एवं नूनं पृथक् विना नाना स्वस्ति अस्ति दोषा मृषा मिथ्या मिथस् अथो अथ ह्यम् श्वम् उच्चैस् नीचैस् शनैस् स्वर् अन्तर् प्रातर् पुनर् भूयस् आहोस्वित् उत सह ऋते अन्तरेण अन्तरा नमस् अलम् कृतम् । 'आ-मा-नो-नाः प्रतिषेधे' ईषत् किल खलु वै आरात् मृशं यत् तत् स्वराश्च इति चादिगणो निपातसंज्ञो भवति । द्रव्यवचने नेति ज्ञेयम् ।

नखरूप हलका अग्रभाग (वः = युष्मान्) आप लोगोंकी रक्षा करे । यहाँ युष्मान्को वस् आदेश हुआ है ।

चादिभिश्च—'च, वा, ह, अह—, एव' इन पाँचोंके योगमे युष्मद—अस्मद् शब्दको उपर्युक्त आदेश होते हैं ।

युष्मद् शब्द—			अस्मद् शब्द—		
त्वम्	युवाम्	यूयम्	अहम्	आवाम्	वयम्
त्वां—त्वा	युवां—वां	युष्मान्—वः	मां—मा	आवां—नौ	अस्मान्—नः
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः
तुभ्यं—ते	युवाभ्यां—वां	युष्मभ्यं—वः	मह्यं—मे	आवाभ्यां—नौ	अस्मान्—नः
त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
तव—ते	युवयोः—वां	युष्माकं—वः	मम—मे	आवयोः—नौ	अस्माकं—नः
त्वयि	युवयोः	युष्मासु	मयि	आवयोः	अस्मासु

इति षड्लिङ्गाः

—❋:०:❋—

चादिर्निपातः—चादि (च वा ह आदि) और स्वर (अ आ इ आदि) निपात (अव्यय) संज्ञक हैं ।

तत्र चादिगणो विभक्त्यर्थे निपात्यते। तस्मिन्निति तत्र। यस्मिन्निति यत्र। कस्मिन्निति कुत्र। क्व कुह। अस्मिन्निति अत्र। कस्मिन् काले कदा। तस्मिन् काले तदा। यस्मिन् काले यदा। सर्वस्मिन् काले सर्वदा। एकस्मिन् काले एकदा। तेन प्रकारेण तथा। येन प्रकारेण यथा। केन प्रकारेण कथम्। अनेन प्रकारेण इत्थम्। तस्मादिति ततः। एवं कुतः अतः इतः। सार्वविभक्तिकः तस् इत्येके। पूर्वस्मिन्निति पुरस्तात्। परस्मिन्निति परेण। **आहिच्च दूरे*** दक्षिणाहि वसन्ति चाण्डालाः। **किमः सामान्ये चिदादिः*** सर्वविभक्त्यन्तात्किंशब्दादज्ञातानिर्धारणार्थकसामान्येऽर्थे चिच्चनौ भवतः। कश्चित्। कश्चन क्वचन केचित्। **तदधीनकार्त्स्न्ययोर्वा सात्*** राजाधीनं राजसात्। सर्वं भस्म करोति इति भस्मसात्। अग्नेः अधीनमित्यग्निसात्। **सात् प्रत्ययस्य षत्वं नेच्छन्ति*** **उर्युररीं अङ्गीकरणे*** उरीकृत्य उररीकृत्य। **सद्यादिः काले निपात्यते***। सद्यः अद्य सपदि अधुना सम्प्रति सांप्रतम् आशु शीघ्रम् झटिति तूर्णं। पूर्वेद्युः अन्येद्युः परेद्युः उभयेद्युः। यर्हि तर्हि जोषम् मौनम् इत्यादि चादिगणः॥ १॥

प्रादिरुपसर्गाः ॥ २॥ प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप अन्तर् आविर्। अयं गण उपसर्गसंज्ञकः(१)॥ २॥

प्राग्धातोः ॥ ३॥ उपसर्गा धातोः प्राक् प्रयोक्तव्याः॥ ३॥

---

(१) **उपसर्गसंज्ञकः। एतेषां यत्र धातुना सह योगः तत्रैवोपसर्गसंज्ञा,**

आहिच्च—दूर अर्थ वाच्य होने पर आहिच् प्रत्यय होता है। **किमः सामान्ये**—तीनों लिङ्गमे सर्वविभक्त्यन्त किम् शब्दसे सामान्य (अज्ञात और अनिर्धारण) अर्थमे चित् प्रत्यय होता है। **तदधीन**—अधीन और कार्त्स्न्य (सम्पूर्ण) अर्थमे सात् प्रत्यय होता है, विकल्पसे।

सात्प्रत्ययस्य—सात् प्रत्ययको षत्व नहीं होता है (अत एव 'अग्निसात्' मे षत्व नहीं हुआ) **उर्युररी**—अङ्गीकरण अर्थमें उरी, उररी दोनों शब्द निपातन होते हैं। **सद्यादिः**—काल अर्थमे सद्य, अद्य आदि निपातन होते हैं। **प्रादिरुपसर्गाः**—प्र परा आदि उपसर्ग संज्ञक है। **प्राग्धातोः**—प्रादि उपसर्ग

तदव्ययम् ॥ ४ ॥ तदिदं(१)प्रादि चादिरूपमव्ययसंज्ञं भवति ॥ ४ ॥

(२)क्त्वाद्यन्तं च ॥ ५ ॥ क्त्वा ल्यप् तुम् णम् च्वि डा धा वतु आम् कृत्वस् शस् तस् इत्येतदन्तं शब्दरूपमव्ययं भवति ॥ ५ ॥

अव्ययाद्विभक्तेर्लुक् ॥ ६ ॥ अव्ययात्परस्या विभक्तेर्लुग् भवति । न शब्दनिर्देशे* अव्ययानां च न लिङ्गादिनियमः । उक्तं हि—

'सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥ १ ॥

उक्तान्यव्ययान्यलिङ्गानि(३) ॥ ६ ॥

इत्यव्ययानि ॥

— * —

नान्यत्र । (१) प्रादि चादीति । प्र–आदिर्यस्य, च–आदिर्यस्य, तद्रूपमित्यर्थः ।

(२) क्त्वाद्यन्तेति । कृत्वा, निराकृत्य, कर्तुम् । स्मारं–स्मारम् । गङ्गीकरोति, शङ्क्लीभवति । दुःखाकरोति । 'अदो दुःखाकरोति माम्' इति माघः । पट्पटाकरोति, एकधा, बहुधा, घटवत्, पटवत्, तुल्यार्थे वत् प्रत्ययः । गोपायांचकारः । बहुशः, एकशः अन्यतः, सर्वतः । इत्याद्युदाहरणानि । निपाताश्चोपसर्गाश्च धातवश्चेति ते त्रयः । अनेकार्थाः स्मृताः सर्वे पाठस्तेषां निदर्शनम् ॥ (३) स्त्री पुं नपुंसकादि लिङ्गरहितानि अलिङ्गानीत्यर्थः ।

धातुसे पूर्व युक्त होते हैं । तदव्ययम्—पूर्वोक्त प्रादि और चादि अव्ययसंज्ञक हैं । क्त्वाद्यन्तं च—क्त्वा आदि प्रत्ययान्त शब्द अव्ययसंज्ञक हैं । अव्ययाद्—अव्ययसे पर विभक्तिका लुक् (लोप) हो जाता है । न शब्द—शब्दत्वनिर्देश में अव्ययोंकी विभक्तिका लोप नहीं होता है । (यथा—'क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च' । 'समवप्रविभ्यः स्थः' 'उद्विभ्यां तपः' आदि) ।

सदृशं त्रिषु—जिस शब्दका तीनों लिंगोंमें, सब विभक्तियोंमें और सब वचनोंमें समान रूप हो—कुछ भी विकारको प्राप्त न करे, वह अव्यय कहलाता है ।

इत्यव्ययप्रकरणम्

— * —

अथ स्त्रीप्रत्ययाः

अधुना लिङ्गविशेषविजिज्ञापयिषया स्त्रीप्रत्ययाः प्रस्तूयन्ते ।

आबतः स्त्रियाम् ॥ १ ॥ अकारान्तान्नाम्नः स्त्रियां वर्तमानादाप्प्रत्ययो भवति स्त्रीत्वे द्योत्ये । (१)जाया माया मेधा श्रद्धा धारा इत्यादि ।

अजादेश्चाप् वक्तव्यः* अजा एडका कोकिला बाला वत्सा शूद्रा गणिका ॥१॥

काप्यतः ॥ २ ॥ कापि परे पूर्वस्याकारस्य इकारो भवति । कन्यकादौ न भवति । कारिका पाठिका कालिका तालिका ॥ २ ॥

'वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः ।
आपं चैव हसान्तानां यथा वाचा निशा दिशा' ॥ १ ॥

अवगाहः वगाहः । अपिधानम् पिधानम् ।

ह्रस्वो वा ॥ ३ ॥ स्त्रियां कापि परे तकारादौ च पूर्वस्य ह्रस्वो वा भवति । वेणिका वेणीका । नदिका नदीका । श्रेयसितरा श्रेयसीतरा । श्रेय-

---

(१) **स्त्रीत्वे द्योत्ये इति । सूत्रे 'अतः' इति षष्ठ्यन्तं पदं तस्याश्च वाच्यवाचकभावोऽर्थः । स्त्रियामिति धर्मप्रधानो निर्देशः । एवं च लिङ्गस्य शाब्दबोधेन प्राधान्यापत्तिः किन्तु प्रत्ययार्थस्य । लिङ्गादयो नाम्न एव धर्मा इत्याशयेनाह—'द्योत्ये' इति ।**

आबतः—स्त्रीलिङ्गमें वर्तमान अकारान्त नामसे आप् प्रत्यय हो स्त्रीत्व-'त्य रहने पर । **अजादेः**—स्त्रीलिंगमे वर्तमान अजादि नामसे भी आप् प्रत्यय हो । **काप्यतः**—स्त्रीलिंगमे काप्के परे अकारको इकार हो । कन्य-कादिको छोड़कर ।

वष्टि—भागुरि आचार्य अव और अपि उपसर्गके आदि अकारका लोप कहते हैं । यथा—अव × गाहः—वगाहः । अपि × धानम् = पिधानम् । आचार्यजी हलन्त शब्दोंसे स्त्रीलिंगमे आप् भी कहते है । यथा—वाच् × आ= वाचा । निश् × आ = निशा । दिश् × आ = दिशा । (अन्य आचार्यके मतसे लोपविधायक सूत्र नहीं होनेसे 'अवगाह' और 'अपिधानम्' भी रूप होते हैं ।

ह्रस्वो वा—स्त्रीलिंगमे काप्के परे तथा तर, तम, रूप और कल्प प्रत्ययके परे ह्रस्व हो विकल्पमे ।

सितमा। श्रेयसीतमा। नौकादौ ह्रस्वो न भवति। वाग्रहणादियं विवक्षा। निश्चयेन पतन्त्यनेकेष्वर्थेष्विति व्युत्पत्तेः। निपातानामनेकार्थत्वात् ॥ ३ ॥

नण ईप् ॥ ४ ॥ नकारान्तादृकारान्तादण्णन्ताच्च स्त्रियामीप्प्रत्यो भवति। दण्डिनी दन्तिनी करिणी मालिनी। **ईपि राज्ञोऽल्लोपो वक्तव्यः*** राज्ञी शुनी कर्त्री हर्त्री औपगवी ॥ ४ ॥

यस्य लोपः ॥ ५ ॥ इश्च अश्च यस्तस्य लोपो भवति स्वरे यकारे च परे ॥ ५ ॥

ष्ट्व्रितः ॥ ६ ॥ षकारटकारउकारऋकारानुबन्धात्स्त्रियामीप्प्रत्ययो भवति। ष्—वराकी। ट्—कुरुचरी। उ—गोमती ॥ ६ ॥

नण ईप्—नकारान्त, ऋकारान्त और अन्नन्तसे ईप् प्रत्यय हो, स्त्रीलिंग मे। **ईपि राज्ञी**—ईप् प्रत्ययके परे राजन् शब्दके अकारका लोप हो। **यस्य लोपः**—इकार और अकारका लोप हो, स्वरके परे और यकारके परे।

नोट :—'**नस्वस्रादिभ्यः**'—स्वस्रादिसे ईप् नही होता। '**स्वसा तिस्रश्च-तस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा। याता मातेति सप्तैते स्वस्रादय उदाहृताः।**' '**मन्नन्ताश्च**'—मन् प्रत्ययान्तसे ईप् नहीं होता। सीमा, सीमानौ। दामा,—दामानौ। इत्यादि।

'**अन्नन्ताद्बहुव्रीहौ**'—बहुव्रीहि समासमें अन्नन्तसे ईप् नहीं होता बहु-यज्वा, बहुयज्वे। बहुयज्वा, बहुयज्वानौ। इत्यादि। '**डीप् वा**'—बहुव्रीहि समासमे मन्नन्त और अन्नन्तसे डाप् प्रत्यय विकल्पसे होता है। बहुसीमा, बहुसीमे। बहुसीमा, बहुसीमानौ। इत्यादि। '**पादो वा**'—समासान्त पाद शब्दमे ईप् प्रत्यय विकल्पसे होता है। **द्विपदी-द्विपात्।** '**आबृचि**'—ऋचा-वाच्य पदान्तसे आप् प्रत्यय होता है। द्विपदा ऋक्। '**उपधालोपिनश्च**'—उपधालोपी अन्नन्त बहुव्रीहिसे ईप् प्रत्यय विकल्पसे होता है। बहुराज्ञी। बहुराजा। इत्यादि। '**संख्यादेर्दाम्नो वा**'—संख्यादि दामन् शब्दसे ईप् प्रत्यय विकल्पसे होता है। द्विदाम्नी।

ष्ट्व्रितः—षकारानुबन्ध, टकारानुबन्ध, उकारानुबन्ध और ऋकारानुबन्धसे स्त्रीलिंगमें ईप् प्रत्यय हो।

अप्यर्योर्नुन्नित्यम् ॥ ७ ॥ (१)अप्प्रत्ययप्रत्ययसम्बन्धिनोऽवर्णात्परस्य शतुर्नित्यं नुम् इकारे ईपि च परे । ॠ–पचन्ती पठन्ती इत्यादि ॥ ७ ॥

नदादेः ॥ ८ ॥(२) नदादेर्गणात्स्त्रियामीप्प्रत्ययो भवति । नदी गौरी गौतमी । **ईप्यनडुहो वाम् वक्तव्यः*** अनड्वाही–अनडुही ॥ ८ ॥

इन्द्रादेरानीप् ॥ ९ ॥ इन्द्रादेर्गणाद् आनीप् प्रत्ययो भवति । इन्द्राणी भवानी शर्वाणी । **मातुलोपाध्यायक्षत्रियाचार्यसूर्याद्वा*** मातुलानी मातुली इत्यादि । **हिमारण्ययोराधिक्ये आनीप् प्रत्ययो भवति ।** महद्धिमं हिमानी इत्यादि । **आचार्यादण्वं च*** आचार्यानी आचार्या । **अर्यक्षत्रियाभ्यां वा स्वार्थे*** अर्याणी अर्या । क्षत्रियाणी क्षत्रिया । **ब्रह्मन् शब्दस्य नलोपो वाच्यः*** ब्रह्माणी ॥ ९ ॥

ईप् समाहारे गुणश्च ॥१०॥ (३)समाहारार्थे ईप्प्रत्ययो भवति गुणश्च । त्रयी पञ्चकुली ॥ १० ॥

---

(१) **अप्पदेन प्रथमगणस्य शब्विकरणं, यपदेन चतुर्थगणस्य श्यन् विकरणं ग्राह्यमिति भावः ।**

(२) **नदादिः आकृतिगणः ।** (३) **समाहारे एकीभावार्थे इत्यर्थः ।**

अप्ययोः–अप् (शप्) और य (श्यन्) प्रत्यय सम्बन्धी अकारसे पर शतृ प्रत्ययको नित्य ही नुम्का आगम हो ।

नोट :–**'वादीपोः शतुः'**–अवर्णसे पर शतृ प्रत्ययको विकल्पसे नुमागम होता है । नुदती–नुदन्ती । **'धातोरुदितो न'**–उकारानुबन्ध धातुसे ईप् प्रत्यय नहीं होता है । उखास्रत् । पर्णध्वत् ।

नदादेः–स्त्रीलिंगमें नदादिसे ईप् प्रत्यय हो । **ईप्यनडुहो**–ईप् प्रत्ययके परे अनडुह् शब्दको विकल्पसे आम् होता है । **इन्द्रादेरानीप्**–इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृण, हिम, अरण्य, यव, यवन, ब्रह्मन् आदि शब्दोंसे आनिप् प्रत्यय हो । **मातुलो**–मातुल, उपाध्याय, क्षत्रिय, आचार्य और सूर्य शब्दसे विकल्पसे आनिप् प्रत्यय हो । **हिमारण्ययोः**–हिम और अरण्य शब्दसे आधिक्य अर्थमें आनिप् प्रत्यय होता है । **अर्यक्षत्रिया**–अर्य और क्षत्रिय शब्दसे स्वार्थमें आनिप् प्रत्यय विकल्पसे होता है । **ब्रह्मन्शब्दस्य**–ब्रह्मन् शब्दके नकारका लोप हो । **ईप्समाहारे**–समाहार (एकीभाव) अर्थमें ईप् प्रत्यय और गुण होता है ।

पुंयोगे च ॥ ११ ॥ अकारात् पुयोगे ईप्प्रत्ययो भवति। शूद्रस्य स्त्री शूद्री। गणकी ॥ ११ ॥

जातेरयोपधात् ॥ १२ ॥ जातिवाचिनोऽयकारोपधादकारान्तात्स्त्रियामीप्प्रत्ययो भवति। मेषी सूकरी हंसी कुक्कुटी ब्राह्मणी। अयकारोपधादिति किम् क्षत्रिया वैश्या। **शूद्राज्जातौ न:*** शूद्रस्य जाति: शूद्रा। **महत्पूर्वात्तु ईप्*** महाशूद्री आभीरजाति:। पुयोगे च। महाशूद्रस्य भार्या महाशूद्री। **प्रथमवयोवाचिनोऽत्र ईप् वक्तव्य:*** कुमारी किशोरी कलभी। प्रथमग्रहणात्। वृद्धा स्थविरा इत्यत्र न। अद्ग्रहणात्। शिशु: इत्यत्रापि न ॥ १२ ॥

पुंयोगे च–अकारान्तसे पुंयोगमें ईप् प्रत्यय होता है। **जातेरयोपधात्**–यकारोपधसे भिन्न जातिवाची शब्दसे स्त्रीलिंगमें ईप् प्रत्यय होता है।

नोट :–'जातेरयोपधात्' सूत्रमें निम्न त्रिविध जातिका ग्रहण होता है:—

(१) **'आकृतिग्रहणा जाति:'** अर्थात् स्वरूप देखनेसे ही जो जानी जासके वह जाति कहलाती है। शूकरी, तटी इत्यादि।

(२) **'लिङ्गानां च न सर्वभाक् सकृदाख्यातनिर्ग्राह्या'** अर्थात् जिससे सभी लिंग नहीं होते हों और एक व्यक्तिमें कहने पर अन्य व्यक्तियों मे बिना कहे ही जातिका ज्ञान हो सके–वह भी जाति कहलाती है। 'वृषलत्व' जातिको सिद्ध करनेमे प्रथम लक्षण साधक नहीं हो सकेगा क्योंकि हस्ताद्यवयव (आकृति) यथा वृषल (शूद्र) मे है वैसा ही ब्राह्मणादियोंमे भी देखा जाता है। अतः 'लिङ्गानां चे'त्यादि उपर्युक्त द्वितीय लक्षणकी आवश्यकता हुई। उदाहरण देखो–'वृषली'। यहाँ एक ही व्यक्तिमे 'वृषलत्व' का ज्ञान कराने पर उसके पुत्र, भाई आदिमें ज्ञान कराये विना ही 'वृषलत्व' जाति सुग्रह हो जाती है।

(३) **'गोत्रं च चरणै: सह'** अर्थात् अपत्य प्रत्ययान्त और शाखाध्येतृवाची जो शब्द है वह भी जातिकार्यको प्राप्त हो। उदाहरण देखो–औपगवी, कठी इत्यादि। यहाँ आकृतिग्रहणका अभाव है और उभयत्र सर्वलिङ्गता भी है अतः 'गोत्रं च' इस तृतीय लक्षणकी आवश्यकता हुई।

शूद्राज्जातौ न–शूद्र शब्दसे जाति अर्थमें इप् प्रत्यय नहीं हो। **महत्पूर्वात्तु**–जातिवाची महत्पूर्वक शूद्र शब्दसे ईप् प्रत्यय होता है। **प्रथमवयो**–प्रथम वयवाची अदन्त शब्दसे स्त्रीलिंगमें ईप् प्रत्यय हो।

स्वाङ्गाद्वा ॥ १३ ॥ स्वाङ्गवाचिनो वा स्त्रियामीप्प्रत्ययो भवति। सुमुखी मृगाक्षी तन्वङ्गी। वाग्रहणात् पद्मवदना कमलवदना इत्यादौ ईप् न भवति। **कृदिकारादक्तेरीब् वा वक्तव्यः*** अङ्गुलिः अङ्गुली। धूलिः धूली। आजिः आजी। अक्तेरिति विशेषणात्। कृतिः भूतिः इत्यादौ न ॥

ऐ च मन्वादेः ॥ १४ ॥ (१) मन्वादेर्गणात्स्त्रियामीप्प्रत्ययो भवति ऐकारादेशश्च। मनायी। वृषाकपायी। चकारात् **'मनोरौ वा'** मनावी ॥१४॥

पत्न्यादयः ॥ १५ ॥ पत्न्यादय ईप्प्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। **समानैकवीर पिण्डपुत्रभ्रातृदासेभ्यो बहुव्रीहौ पत्युर्नदेश ईप् च*** सपत्नी। एकपत्नी। वीरपत्नी। पिण्डीपत्नी इत्यादि। अन्तर्वत्नी (२) सखी, अशिश्वी, अर्धजरती,

---

(१) **मन्वादेरिति तेन अग्नायी, कुसितायी, कुसिदायी, पूतक्रतायी, यया तु क्रतवः पूताः स्यात् पूतक्रतुरेव सा। (२) सखी–अशिश्वी भाषायामेव।**

स्वाङ्गात्–स्वांगवाची अदन्त शब्दसे स्त्रीलिंगमें ईप् प्रत्यय विकल्प से होता है।

नोट:–'स्वाङ्गाद्वा' इस सूत्रमें स्वस्य=अवयवीभूतस्य अङ्गं 'स्वाङ्गम्' ऐसा स्वाङ्गका ग्रहण होगा तो 'सुमुखा शाला' यहाँ भी ईप् हो जायगा, मुखस्य शालाङ्गत्वात् किंच 'सुकेशी रथ्या' मे ईप् नहीं होगा, केशानां रथ्याङ्गत्वाभावात्। तस्मात् (१) **अद्रवं मूर्तिमत्स्वाङ्गं प्राणिस्थमविकारजम्,** (२) **अतस्थं तत्र दृष्टं च,** (३) **तेन चेत्तथा युतम्।** इस तरहका त्रिविध-स्वाङ्गका ग्रहण यहाँ होता है।

(विशेष लघुकौमुदीकी 'इन्दुमती' टीका देखो)।

कृदिकारात्,–क्तिन्न-भिन्न कृत्संज्ञक इकारान्त शब्दसे ईप् प्रत्यय विकल्पसे हो। **ऐ च मन्वादेः**–मनु, पूतक्रतु, वृषाकपि, अग्नि और कुसित शब्दसे स्त्रीलिंगमे ईप् प्रत्यय हो और साथ ही ऐकार आदेश भी हो। **मनोरौ वा**—मनु शब्दसे ईप् प्रत्यय हो और साथ ही साथ 'औ' आदेश भी हो विकल्पसे। (इस लिये 'मनोर्भार्या' इस विग्रहमें '**मनायी, मनावी, मनुः**' तीनो रूप होते हैं)।

पत्न्यादयः—पत्नी आदि शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं। **समानैक**—समान, एक, वीर; पिण्ड, पुत्र, भ्रातृ और दास शब्दसे पर पति शब्दको बहु-

युवती। प्राची प्रतीची उदीची समीची। दाराशब्दो (१) नित्यं बहुवचनान्तः पुल्लिङ्गः (२)। दाराः दारान् दारैः दारेभ्यः दारेभ्यः दाराणाम् दारेषु। हे दाराः॥ १५॥

वोर्गुणात्॥ १६॥ वकारान्ताद् गुणवाचिनो (३) वा स्त्रियामीप्प्रत्ययो भवति। पट्वी पटुः। मृद्वी मृदुः। तन्वी तनुः। ऋज्वी ऋजुः॥ १६॥

उत ऊः॥ १७॥ उकारान्तान्मनुष्यजातेः स्त्रियामूप्रत्ययो वा भवति पङ्गूः पङ्गुः। वामोरूः वामोरुः॥ १७॥

यूनस्तिः॥ १८॥ युवन् शब्दात् स्त्रियां तिप्रत्ययो भवति। 'नाम्नो नो'- युवतिः (४)। एभ्यो नामत्वात्स्यादयः। आबन्ताद् 'आपः' इति सिलोपः। ईबन्तात् 'हसे पः सेर्लोपः' इति पूर्ववत्प्रक्रिया॥ १८॥ इति स्त्रीप्रत्ययाः।

---

(१) दारा शब्देति। दारा इत्यत्र बहुवचनं अवयवबहुत्वस्याऽवयविनि बहुत्वमारोप्य कृतमिति केचित्।

(२) पुलिङ्ग इति। ननु दाराशब्दः स्त्रियां प्रयुज्यमानः कथं पुंल्लिङ्गो भवतीति चेत्। अत्र व्याकरणशास्त्रे 'स्तनकेशवती स्त्री स्यात्, लोमशः पुरुषः स्मृतः। उभयोरन्तरं यच्च तदभावे नपुंसकम्।' इति लोकप्रसिद्धं स्तनाद्यवयवसंस्थानविशेषात्मकं लिङ्गं नाश्रीयते। अन्यथा दारानित्यादौ नत्वाभावप्रसङ्गः। तट. तटी तटमित्यादौ यथायथं लिङ्गत्रितयकार्याणाम- सिद्धिप्रसङ्गाच्च। अपि तु पारिभाषिकमेव लिङ्गम्। तच्च केवलान्वयि। अत एव अयं पुरुषः, इयं व्यक्तिः, इदं मस्तकमिति एकव्यक्तावेव प्रयोगो भवति। तत्र कश्चिच्छब्दः एकस्मिन् द्वयोः त्रिषु वा लिङ्गेषु वाच्य इति तु वृद्धव्यवहारेण लिङ्गानुशासनेन वा निर्णेयम्। वस्तुतस्तु संस्त्यायते सा स्त्री सूतेऽसौ पुमान्। सत्त्वरजस्तमसां गुणानामपचयोपचयरूपो स्त्रीपुंधर्मौ तयोरभावे नपुंसकमिति। (३) सत्वे निविशतेऽपैति पृथग्जातिषु दृश्यते। आधेयश्चाक्रियाजश्च सोऽसत्त्वप्रकृतिर्गुणः। (४) ननु कथं तर्हि 'युवती

व्रीहि समासमें नादेश और ईप् प्रत्यय भी हो, स्त्रीलिगमे। (समानः पतिर्यस्याः सा 'सपत्नी') वोर्गुणात्—गुणवाची उकारान्त शब्दसे स्त्रीलिंगमें ईप् प्रत्यय हो विकल्पसे। उत ऊः—मनुष्य जातिवाची उकारान्त शब्दसे ऊप्रत्यय हो स्त्रीलिंगमें विकल्पसे। यूनस्तिः—युवन् शब्दसे स्त्रीलिंगमें तिप्रत्यय हो।

स्त्रीप्रत्यय समाप्त।

अथ कारकाणि

(१) अथ विभक्त्यर्थो निरूप्यते ।

लिङ्गार्थे प्रथमा ॥ १ ॥ धातुप्रत्ययानिरिक्तमर्थवच्छब्दरूपं लिङ्गं तस्यै-वार्थे सत्मात्रे प्रथमा विभक्तिर्भवति । लिङ्गादयोऽपि प्रथमार्था इति केचित् (२) । आदिशब्दात् लिङ्गवचनपरिमाणमात्रेऽपि प्रथमा । तत्सद्ब्रह्म ॥ १ ॥

करनिर्मथितं दधि' इति 'तदा युवत्यः स्तनकेशमुक्ताः साक्रोशमूचुर्निज-जीवितेशम्' इति च व्याकरणान्तररीत्यैव साधनीयमिति केचित् ।

(१) आरोहणावरोहणक्रमयोर्मध्ये अवरोहणक्रमेण शब्दसाधुत्वं कथयन् अनुभूतिस्वरूपाचार्यो नाम्नो जायमानानां 'सि' 'औ' इत्यादिप्रत्ययानामर्थ-विशेषव्यवस्थां दर्शयति-अथेति । अत्र शास्त्रे विभक्तिसंज्ञायाः कथनाभावेऽपि 'धातुतो नामतो वा जायमानानां प्रत्ययानां तिङां स्यादीनां च विभक्तिसंज्ञा' इति शास्त्रान्तरोक्तसङ्केतोऽङ्गीकरणीयः । यद्वा लोकप्रसिद्धत्वात्सूत्रकारेण पृथङ्नोक्त इति भावः ।

(२) अत्रारुचिबीजं तु स्वार्थद्रव्यलिङ्गसंख्याकारकेति पञ्चापि नामार्था एव । स्वार्थः-प्रवृत्तिनिमित्तम् । द्रव्यं-व्यक्तिः । लिङ्गम्-तदाश्रयोपचयापचयोभयसाम्यबोधको धर्मः । संख्या-एकत्वादयः । कारकम्-क्रियाजनकम् । एवं च कारकार्थबोधिका विभक्तिर्बहिरङ्गा । 'लिङ्ग' तु ज्ञानक्रमानुरोधेनान्तरङ्गमिति लिङ्गस्य प्राधान्यम् । विभक्तेस्तु तदनुपातित्वात् विभक्त्यर्थो न लिङ्गमिति ।

लिङ्गार्थे—धातु और प्रत्ययसे भिन्न अर्थवान् शब्दरूप लिंग है, उस लिंग के अर्थमें सत्तामात्रमे प्रथमा विभक्ति होती है । (सम्पूर्ण कारकभेदशून्य वस्तु सत्ता है) कोई आचार्यका मत है कि लिंगादि भी प्रथमार्थ है । ततश्च—आदि पदसे लिंग, वचन और परिमाणमात्रमें प्रथमा होती है, ऐसा समझना चाहिये ।

नोटः—क्रिया (कार्य) मे स्वतन्त्रतासे विवक्षित अर्थ (विषय, मनुष्य या पदार्थ) कर्तृसंज्ञक होता है । अर्थात् उसे कर्ता कहते हैं—वह कभी प्रथमान्त और कभी तृतीयान्त होता है ।

रविरिव राजते राजा रोषात्कुमारी रोरूयते ।
बोभुज्यते भुवं भूपालः प्रागास्तां रामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥
प्रथमान्तो यदा कर्ता कर्मणि द्वितीया तदा ।
यदा कर्ता तृतीयान्तः कर्मणि प्रथमा तदा ॥ २ ॥
मनसि वचसि कृत्ये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजगुणविकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥ ३ ॥
कुमाराः शेरते स्वैरं रोरूयन्ते च नारकाः ।
जेगीयन्ते च गीतज्ञा मेम्रियन्ते रुजार्दिताः ॥ ४ ॥'

आमन्त्रणे च ॥ २ ॥ आमन्त्रणमभिमुखीकरणं तस्मिन्नर्थे प्रथमा विभक्तिर्भवति ।

'मां समुद्धर गोविन्द ! प्रसीद परमेश्वर !
कुमारौ ! स्वैरमासाथां क्षमध्वं भो तपस्विनः ! ॥ ५ ॥

भोसः ॥ ३ ॥ भोस् भगोस् अघोस् एते शब्दा निपात्यन्ते विधिविषये ।

"क्षमस्व भो दुराराध्य ! भगोस्तुभ्यं नमः सदा ।
अधीष्व भो महाप्राज्ञ ! घातयाघोः स्वघस्मरम् ॥ ६ ॥'

इति प्रथमा ॥ १ ॥

प्रथमान्तो—जब कर्ता प्रथमान्त होता है तब कर्मसे द्वितीया और जब कर्ता तृतीयान्त होता है तब कर्मसे प्रथमा विभक्ति होती है। (कारिका ३–४ में क्रमशः उदाहरण देखो)।

आमन्त्रणे—आमन्त्रण (सम्बोधन) में प्रथमा विभक्ति होती है। (कारिकामें उदाहरण देखो) **भोसः**—सम्बोधनमें भोस्, भगोस् और अघोस् निपातन होता है। अर्थात् भवन्के भोस्, भगवन्के भगोस् और अघवन्के अघोस् निपातन होता है। (कारिकामें उदाहरण देखो)।

'घातयाघोःस्वघस्मरम्'—हे अघो ! (पापिष्ठ) स्वघस्मरं = स्वपापं, घातय = विनाशय)।

शेषाः कार्ये ॥ ४ ॥ कर्तृसाधनयोर्दानपात्रे विश्लेपावधौ सम्बन्धाधार-भावयोः शेषा विभक्तयो द्वितीयाद्या एष्वर्थेषु भवन्ति । (कार्ये (१) कर्मकारके, उत्पाद्ये आप्ये संस्कार्ये विकार्ये च द्वितीया विभक्तिर्भवति ।)

'कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च ।
अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट् ॥ ७ ॥
कटं करोति कारूको रूपं पश्यति चाक्षुषः ।
राज्यं प्राप्नोति धर्मिष्ठः सोमं सुनोति सोमपाः ॥ ८ ॥
अभिसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु ।
द्वितीयाम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते* ॥ ९ ॥

---

(१) कार्ये कर्मकारके इति । केचित्तु कर्मकारकं त्रिधेति मन्यन्ते । निर्वर्त्यं च विकार्यं च प्राप्यं चेति त्रिधा मतम् ।

शेषाः—शेष (प्रथमासे अन्य) कार्य (कर्म) में द्वितीया, कर्तृसाधन (करण) में तृतीया, दानपात्र (सम्प्रदान) मे चतुर्थी, विश्लेषावधिमें पञ्चमी, सम्बन्धमे षष्ठी और आधार तथा भावमे सप्तमी विभक्ति होती है । द्वितीया विभक्ति चार प्रकारके कर्मकारकमे होती है—१ **उत्पाद्ये** = यन्नवीनं क्रियते तदुत्पाद्यं, तस्मिन् । २ **आप्ये** = यद् आप्यते सिद्धमेव प्राप्यते तद् आप्यं, तस्मिन् । ३ **संस्कार्ये** = संस्काराद्भवः संस्कार्यः, तस्मिन् । ४ **विकार्ये** = विक्रियते अवस्थान्तरं भजते इति विकार्यं, तस्मिन् ।

नोट :—**'साक्षात् क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्'** = क्रियाका जो साक्षात् जनक हो उसे कारक कहते हैं। कारक छै होते है—१. कर्ता, २. कर्म, ३. करण, ४. सम्प्रदान, ५. अपादान और ६. अधिकरण ।

(**क**) क्रियासम्पादनके विषयमे जो स्वतन्त्र (प्रधान) भावसे विवक्षित रहता है उसे 'कर्ता' कहते हैं । कर्तामें प्रथमा विभक्ति होती है ।

'भवेद्विभक्तिः प्रथमा कर्तृवाच्यस्य कर्तरि । सम्बुद्धौ नाममात्रे च कर्म-वाच्यस्य कर्मणि । क्वचिदव्यययोगे च प्रथमा कथ्यते बुधैः ।'

(**ख**) संज्ञाके जिस रूपपर क्रियाके व्यापारका फल पड़ता है उसे कर्म कहते हैं । कर्मसे द्वितीया विभक्ति होती है ।

(**ग**) जो क्रियाके व्यापारमे कर्ताका सहायक हो अर्थात् क्रियासिद्धिमें

अभितो ग्रामं नदी वहति । सर्वतो ग्राम वनानि सन्ति । धिग् देवदत्तम् (१) । उपर्युपरि ग्रामं मेघाः पतन्ति । अधोऽधो ग्रामं शलभाः पतन्ति । अध्यधि ग्रामं मृगाश्चरन्ति । **समया–निकषा–हा–प्रति–योगेऽपि ।** समया ग्रामम् । निकषा ग्रामम् । अनु ग्रामम् ॥ ४ ॥

कालाध्वनोर्नैरन्तर्येऽपि ॥५॥ कालाध्वनोर्नैरन्तर्ये(२) द्वितीया विभक्तिर्भवति । मासम् अधीते । क्रोशं पर्वतः । नैरन्तर्याभावे मासस्य द्विरधीते । क्रोशस्यैकदेशे पर्वतः ॥ ५ ॥

इति द्वितीया ॥ २ ॥

कर्तरि प्रधाने क्रियाश्रये साधके च ॥ ६ ॥ (३)क्रियासिद्ध्युपकारके करणेऽर्थे कर्तरि च तृतीया विभक्तिर्भवति ।

---

(१) **धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च । भर्तृहरिशतके ।**

(२) **अविच्छिन्नसंयोगत्वम् । तच्च द्रव–गुण–क्रियाभिः सह संभवति ।**

(३) **क्रियायाः परिनिष्पत्तिर्यद्व्यापारादनन्तरं विवक्ष्यते यदा यत्र करणं**

जो अत्यन्त उपकारक हो उसे करण कहते है । करणसे तृतीया विभक्ति होती है ।

(घ) जिसको स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वक कोई वस्तु दी जावे उसे सम्प्रदान कहते है । सम्प्रदानमे चतुर्थी विभक्ति होती है । (अत एव दान वाक्यके अन्तमें 'न मम' का उपादान विज्ञ जन नही करते) ।

(ङ) परस्पर वियुक्त होनेवाले पदार्थोमें जो स्थिर हो अर्थात् जिससे विश्लेष (विभाग) अथवा दूरगमन सम्पन्न हो उसे अपादान कहते हैं । अपादानमे पञ्चमी विभक्ति होती है ।

(च) क्रियाके आश्रयभूत कर्ता और कर्म जिसमे अवस्थान करे उसे अधिकरण कहते है । अधिकरणमे सप्तमी विभक्ति होती है ।

अभितः—अभितः, सर्वतः, धिक् तथा आम्रेडितान्त उपरि, अधः और अधिके योगमे तथा अतिरिक्त समया, निकषा, हा और प्रतिके योगमें भी द्वितीया विभक्ति होती है । **कालाध्वनोः**—काल (दिवस मासादि) वाची और अध्व (मार्ग, क्रोश, योजनादि) वाची शब्दोंसे अत्यन्त संयोग रहने पर द्वितीया विभक्ति होती है ।

कर्तरि प्रधाने—क्रियाका आश्रय प्रधानभूत कर्तामे और क्रियाका

भिन्नः शरेण रामेण रावणो लोकरावणः ।
कराग्रेण विदीर्णोऽपि वानरैर्युध्यते पुनः ॥ १० ॥

इति तृतीया ॥ ३ ॥

दानपात्रे चतुर्थी ॥ ७ ॥ दानपात्रे सम्प्रदानकारके चतुर्थी भवति(१) । सम्यक् श्रेयो बुद्धया प्रदीयते तत् सम्प्रदानम् ।

'ददाति दण्डं पुरुषो महीपतेर्न चातिभक्त्या न च दानकाम्यया ।
यद्दीयते दानतया सुपात्रे तत्सम्प्रदानं कथितं मुनीन्द्रैः ॥ ११ ॥'

वेदविदे गां ददाति । अन्यत्र—राज्ञो दण्डं ददाति । रजकस्य वस्त्रं ददाति ।

इति चतुर्थी ॥ ४ ॥

तत्तदा स्मृतम् । रामेणेति कर्तरि तृतीया । शरेणेति करणे तृतीया । तथा वानरैरिति कर्तरि । कराग्रेणेति करणे तृतीया । अभेदार्थे, (स्वार्थे) हेत्वर्थे, सर्वनामप्रयोगे, निमित्ते, अङ्गविकारे, सहादियोगे, इत्यादावपि तृतीया विभक्तिरग्रे वक्ष्यते ।

(१) प्रत्ययेनानुक्तेऽर्थे इत्यपि ज्ञेयम् । तेन 'दानीयो विप्रः' इत्यादौ न । दा धात्वर्थश्च स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरमात्रस्वत्वोत्पादनरूपो ग्राह्यः । तेन 'खण्डिकोपाध्यायः शिष्याय चपेटां ददाति' इत्यत्र चतुर्थी सिद्धा । 'राज्ञो दण्डं ददाति' । 'रजकस्य वस्त्रं ददाति' इत्यत्र अधीनीकरणार्थो दा धात्वर्थ इति नात्र प्राप्तिः ।

सिद्धयुपकारक करण अर्थमें तृतीया विभक्ति होती है । **भिन्नः शरेण**—(लोकान् रावयति=क्रन्दयति, इति .'लोकरावणः' लोगों को रुलानेवाला रावण रामके बाणसे (रामकर्तृक, बाणकरणक) भिन्न (छिन्न) होगया और वानरोंके नखोंसे विदीर्ण (घायल) भी होगया । फिर भी युद्ध करता रहा । यहाँ रामेण और वानरेणमें कर्ता में तथा बाणेन तथा और कराग्रेणमें करणमें तृतीया विभक्ति हुई है ।

दानपात्रे—सम्प्रदान कारकमें दानके पात्रमें चतुर्थी विभक्ति होती है । **ददाति**—पुरुष महीपति (राजा) को दण्ड देता है, किन्तु अति भक्ति या दानकी कामनासे नहीं, प्रत्युत अपने अपराध जन्य देता है । (अत एव महीपतिसे चतुर्थी नहीं हुई) । जो दानरूपसे सुपात्रको दिया जाय उसे ही

विश्लेषाऽवधौ पञ्चमी ॥ ८ ॥ (१)विश्लेषो विभागस्तत्र योऽवधिश्चलतयाऽचलतया वा विवक्षितस्तत्रापादाने पञ्चमी । धावतोऽश्वात्पतत् । भूभृतोऽवतरति गङ्गा । इति पञ्चमी ॥ ५ ॥

सम्बन्धे षष्ठी ॥ ६ ॥ सम्बन्धिनोर्मध्ये योऽप्रधानस्तत्र षष्ठी ।

> 'भेद्यभेदकयोः श्लिष्टः सम्बन्धोऽन्योन्यमिष्यते ।
> द्विष्ठो यद्यपि सम्बन्धः षष्ठ्युत्पत्तिस्तु भेदकात् ॥ १२ ॥
> भेद्यं विशेष्यमित्याहुर्भेदकं च विशेषणम् ।
> प्रधानं च विशेष्यं स्यादप्रधानं विशेषणम् ॥ १३ ॥'

---

(१) विश्लेषो नाम संयोगपूर्वको विभागः स च स्वरूपतो, बुद्धिपरिकल्पितोऽपि गृह्यते तेन 'माथुराः पाटलिपुत्रकेभ्य आढ्यतराः' इत्यादौ बुद्धिपरिकल्पितसंयोगविश्लेषात् प्रयोगोपपत्तिः ।

मुनिश्रेष्ठ सम्प्रदान कहते है। (अत एव 'वेदविदे गां ददाति' में चतुर्थी होती है) ।

नोट:—जिसकी आकांक्षासे कोई कार्य किया जाय अर्थात् जो क्रियाकी प्रवृत्ति का फल हो उसे भी सम्प्रदान कहते है। जैसे मुक्तये हरिं भजति। एवं नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा और अलम् के योगमें भी चतुर्थी होती है। यथा—रामाय नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः। इत्यादि।

विश्लेषावधौ—विश्लेषका अर्थ विभाग है, उस विभागमे जो चल वा अचल अवधि है, उससे अपादानमे पञ्चमी विभक्ति होती है।

सम्बन्धे षष्ठी—सम्बन्धीके मध्यमें जो अप्रधान हो उससे षष्ठी विभक्ति होती है।

भेद्यभेदकयोः—भेद्य-भेदकभाव सम्बन्ध द्विष्ठ होता है। वहाँ भेद्य विशेष्य अत एव प्रधान और भेदक विशेषण अत एव अप्रधान रहता है। इस लिये अप्रधानसे ही षष्ठी होती है। (**क्रियान्वयित्वं प्रधानत्वम्। क्रियाऽनन्वयित्वमप्रधानत्वम्**)। सम्बन्ध चार होते हैं—(क) सेव्यसेवकभाव, (ख) पूज्यपूजकभाव, (ग)

एकक्रियातः परस्परापेक्षारूपः सम्बन्धः ।

'राज्ञः स पुरुषो ज्ञेयः पित्रोरेतत्प्रपूजनम् ।
गुरूणां वचनं पथ्यं कवीनां रसवद्वचः ॥ १४ ॥'

इति षष्ठी ॥ ६ ॥

आधारे सप्तमी ॥ १० ॥ आधारोऽधिकरणम् । तत् षड् विधम् । औपश्लेषिकं १. सामीप्यकम् २. अभिव्यापकं ३. वैषयिकं ४. नैमित्तिकम् ५. औपचारिकं ६ चेति ।

'कटे शेते कुमारोऽसौ वटे गावः सुशेरते ।
तिलेषु विद्यते तैलं हृदि ब्रह्मामृतं परम् ।
युद्धे संनह्यते धीरोऽङ्गुल्यग्रे करिणां शतम् ॥ १५ ॥'

(१) **भावे सप्तमी ॥ ११ ॥** प्रसिद्धक्रिययाऽप्रसिद्धक्रियया लक्षणं बोधनं भावस्तत्र सप्तमी । वर्षति देवे चौर आयातः । पतत्यंशुमालिनि पतितोऽरातिः । काले शरदि पुष्यन्ति सप्तच्छदाः । गोषु दुह्यमानासु गतः ॥ ११ ॥

---

(१) **इयमेव सति सप्तमी ।**

बोध्यबोधकभाव और (घ) वाच्यवाचकभाव । उदाहरण देखो—**'राज्ञः स पुरुषः'** यहाँ सेव्यसेवकभाव संबन्ध है । **'पित्रोरेतत् प्रपूजनम्'** (एतत्=पूरोवर्ति, प्रपूजनम्=पूजनोपकरणं वस्तु, पित्रोः=मातुः पितुश्च) यहाँ पूज्यपूजकभाव सम्बन्ध है । **'गुरूणां वचनं पथ्यम्'** यहां बोध्यबोधकभाव सम्बन्ध है । **'कवीनां रसवद् वचः'** (कवियों के वचन रसीले होते है) यहां वाच्यवाचकभाव सम्बन्ध है ।

आधारे—कर्ता और कर्मके द्वारा जो कर्तृ-कर्मनिष्ठ क्रियाका आधार हो वह अधिकरण कहलाता है, उस अधिकरण (आधार) में सप्तमी विभक्ति होती है । (उदाहरण देखो—**कटे शेते** इत्यादि) ।

भावे—प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध क्रियाका लक्षणबोधन भाव है, भावमें सप्तमी विभक्ति होती है । **'वर्षति देवे (मेघे) चौर आयातः'** यहाँ वर्षति प्रसिद्ध और आयातः अप्रसिद्ध क्रिया है । (अंशुमालिनि=सूर्ये । अरातिः=शत्रुः) ।

अथोपपदविभक्त्यर्थो निरूप्यते

विनासहनमऋतेनिर्धारणस्वाम्यादिभिश्च ॥ १२ ॥ एतैरपि योगे द्वितीयाद्या विभक्तयो भवन्ति । विना पापं सर्वं फलति ।

विना वातं विना वर्षं विद्युतः पतनं विना ।
विना हस्तिकृतं दोषं केनेमौ पातितौ द्रुमौ ॥ १६ ॥'

अन्तरेणाक्षिणी किं जीवितेन । अन्तरा त्वां मां हरिरित्यादि पदात् ग्राह्यम् ॥ १२ ॥

सहादियोगे तृतीयाऽप्रधाने ॥ १३ ॥ सह सदृशं साकं सार्धं समं योगेऽपि तृतीया भवति । सह शिष्येणागतो गुरुः । सदृशश्चैत्रो मैत्रेण । साकं नयनाभ्यां श्लक्ष्णा दन्ताः । सार्धं धनिभिर्वृतः साधुः । समं चन्द्रेणोदितो गुरुः ॥ १३ ॥

नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगे चतुर्थी ॥ १४ ॥ नमो नारायणाय । स्वस्ति राज्ञे । सोमाय स्वाहा । पितृभ्यः स्वधा । अलं मल्लाय । वषडिन्द्राय ॥ १४ ॥

विनासहन—विनादिके योगमें द्वितीयादि विभक्ति होती है । अर्थात् विनादिके योगमे द्वितीया, सहादिके योगमे तृतीया, नमः आदिके योगमें चतुर्थी, ऋते आदिके योगमें पञ्चमी, निर्धारण आदि अर्थमें षष्ठी और स्वाम्यादिके योगमें सप्तमी विभक्ति होती है ।

सहादि—सह, सदृश, साकं, सार्धं और समके योग होने पर अप्रधानमें तृतीया विभक्ति होती है ।

नोटः—'**तृतीया करणे चैव कर्मवाच्यस्य कर्तरि ।**
सहार्थेश्च तथा हेतौ प्रकृत्यादिभ्य एव च ।
ऊनार्थैर्वारणार्थैश्च सदृशार्थैस्तथैव च ।
अङ्गिनो विकृतिर्येन तृतीया स्यात्तदङ्गतः ।'

नमः स्वस्ति—नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं और वषट्के योगमें चतुर्थी विभक्ति होती है ।

नोटः—**सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात् तादर्थ्ये च क्रियायुते ।**
रुच्यर्थानां प्रियमाणे नमोयोगे च सा भवेत् ॥

ऋते आदियोगे पञ्चमी ॥ १४ ॥ ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः । अन्यो गृहाद्विहारः । आराद्वनात् । इतरो ग्रामात् ॥ १५ ॥

ऋतेयोगे द्वितीया च ॥ १६ ॥ ज्ञानमृते । चकारात् विनादियोगेऽपि तृतीयापञ्चम्यौ स्तः । ज्ञानेन विना । ज्ञानाद् विना ॥ १६ ॥

दिग्योगे पञ्चमी ॥ १७ ॥ पूर्वो ग्रीष्माद् वसन्तः ॥ १७ ॥

निर्धारणे षष्ठीसप्तम्यौ ॥ १८ ॥ निर्धारणं–द्रव्यगुणजातिभिः समुदायात्पृथक्करणम् तत्र षष्ठीसप्तम्यौ भवतः । क्रियापराणां भगवदाराधकः श्रेष्ठः क्रियापरेषु वा । गवा कृष्णा गौः संपन्नक्षीरा गोषु वा । एतेषा क्षत्रियः शूरतम एतेषु वा ॥ १८ ॥

स्वाम्यादिभिश्च ॥१९॥ स्वाम्यादिभिर्योगे षष्ठीसप्तम्यौ भवतः । गवां स्वामी गोषु स्वामी । गवामधिपतिः गोष्वधिपतिः ॥ १९ ॥

कर्तृकार्ययोरक्तादौ कृति षष्ठी ॥२०॥ कर्तरि कार्ये च षष्ठीविभक्तिर्भवति कादिवर्जिते कृदन्ते शब्दे प्रयुज्यमाने । व्यासस्य कृतिः । भारतस्य श्रवणम् ॥ २० ॥

स्मृतौ च कार्ये ॥२१॥ स्मृत्यर्थे प्रयुज्यमाने कार्ये कर्मणि विषये षष्ठी ।

ऋते—ऋते (विना), अन्य, इतर, आरात् (दूर=समीप) आदिके योगमें पञ्चमी विभक्ति होती है । **ऋते योगे**–ऋते विना आदिके योगमे द्वितीया भी होती है । **दिग्योगे**–दिशाके योगमे पञ्चमी विभक्ति होती है ।

नोटः—'**अपादाने ल्यबर्थे च योगे पूर्वादिभिस्तथा ।**
उत्कर्षे पञ्चमी ज्ञेया हेत्वर्थे तु विभाषया ।'
ऋते विनादिभिर्योगे पञ्चमी च स्मृता बुधैः ॥

निर्धारणे–द्रव्य (क्रिया) से, गुणसे, जाति अथवा धर्मविशेषसे निर्धार्यमाणका समुदायसे पृथक्करणको निर्धारण कहते है, उस निर्धारणमें षष्ठी अथवा सप्तमी विभक्ति होती है । **स्वाम्या**—स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षी, प्रति, भू और प्रसूतके योगमें षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है । **कर्तृकार्य**—क्तादि प्रत्यय वर्जित कृदन्तके योगमे कर्ता–कर्ममें षष्ठी विभक्ति होती है । **स्मृतौ च**—'स्मृञ् स्मरणे' धातुके प्रयोग होने पर कर्ममें षष्ठी अथवा द्वितीया विभक्ति होती है ।

भानुः स्मरति । मातरं स्मरति । **हेतौ तृतीया पञ्चमी च वक्तव्या*** अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद्वा ॥ २१ ॥

भयहेतौ पञ्चमी ॥२३॥ चोराद्बिभेति । व्याघ्रात्त्रस्यति । विद्युत्पातात् चकितः ॥ २३ ॥

षष्ठी हेतुप्रयोगे च ॥२४॥ अन्नस्य हेतोर्वसति । चकारात्सर्वादेः हेतुप्रयोगे सर्वा विभक्त्यो भवन्ति । केन हेतुना कस्य हेतोः । **निमित्तकारणहेत्वर्थप्रयोगेऽपि सर्वा विभक्तयो भवन्ति** । को हेतुः । कं हेतुम् । केन हेतुना । कस्मै हेतवे । कस्मात् कस्य च हेतोः । कस्मिन् हेतौ ॥ २४ ॥

इत्थम्भावे तृतीया ॥२५॥ शिष्यं पुत्रेण पश्यति । संसारमसारेण पश्यति पुष्करिणीं नद्या पश्यति ॥ २५ ॥

येनाङ्गविकारः ॥२६॥ येनाङ्गेन विकृतेनाङ्गिनोऽङ्गविकारो लक्ष्यते तस्मादङ्गवाचकाच्छब्दात्तृतीया विभक्तिर्भवति । देवदत्तोऽक्ष्णा काणः । पादेन खञ्जः । कर्णेन बधिरः । शिरसा खल्वाटः ॥ २६ ॥

नोट :—'**षष्ठी भवति सम्बन्धे कृदन्ते कर्तृकर्मणोः । तृतीया स्यात् तथा षष्ठी कृत्यानां कर्तृकारके । कुल्यार्थयोगे षष्ठी स्यात् तृतीया च विभाषया ॥**

हेतौ तृतीया—हेत्वर्थमे तृतीया वा पञ्चमी विभक्ति होती है ।

भयहेतौ—भयके हेतुमे पञ्चमी विभक्ति होती है । **षष्ठी हेतु**—हेतु शब्दके प्रयोगमे षष्ठी तथा तृतीयादि सभी विभक्तियाँ विकल्पसे होती हैं । **निमित्त**—निमित्त, कारण और हेत्वर्थ प्रयोगमे भी सभी कारक विभक्तियाँ होती हैं ।

नोट :—हेतु और कारणमे थोड़ी विभिन्नता है । तथाहि—**द्रव्यगुणक्रियात्मककार्यत्रयनिरूपितनिर्व्यापार-सव्यापारवृत्ति च यत्तद्धेतुत्वम्'** और **क्रियाजनकमात्रवृत्तिव्यापारवद्वृत्ति च यत् तत् कारणत्वम् ।'** 'दण्डेन घटः' यहाँ जो दण्डरूप हेतु है, उसमे व्यापार तो है पर क्रियाजनकत्व नहीं है अतः वह कारण नहीं है । एवं पुण्येन दृष्टो हरिः यहाँ जो पुण्यरूप हेतु है, उसमें हरिदर्शनकत्वरूप क्रियाजनकता है, पर वह व्यापारवान् नहीं है । अतः वह कारण नहीं है ।

इत्थं भावे—इत्थम्भाव (भेद-सादृश्य) मे तृतीया विभक्ति होती है ।

येनाङ्ग—जिस विकृतसे अङ्गीका अङ्गविकार लक्षित हो उस अङ्गसे तृतीया-

जनिकर्तुः प्रकृतिः ॥ २७ ॥ जायमानस्य कार्यस्योपादानमपादानसंज्ञं भवति । तत्रापादाने पञ्चमी । 'यस्मात्प्रजाः प्रजायन्ते तद्ब्रह्मेति विदुर्बुधाः' ॥

आङादियोगे पञ्चमी ॥२८॥ आ पाटलिपुत्राद् वृष्टो देवः ॥ २८ ॥

तादर्थ्ये चतुर्थी ॥२९॥

'संयमाय श्रुतं धत्ते, नरो धर्माय संयमम् ।
धर्मं मोक्षाय मेधावी, धनं दानाय भुक्तये ॥ १६ ॥

क्रुध्यादियोगे चतुर्थी ॥३०॥ क्रूराय क्रुध्यति । मित्राय द्रुह्यति । गुणवते असूयति ॥ **ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च** (१)* हर्म्यात् प्रेक्षते । आसनात् प्रेक्षते । **निमित्तात्कर्मयोगे सप्तमी च वक्तव्या**:* ।

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् ।
केशेषु चमरीं हन्ति, सीम्नि पुष्कलको हतः ॥ १७ ॥

विषये च ॥ ३१ ॥ विषयेऽर्थे सप्तमी भवति । तर्के चतुरः ॥ ३१ ॥

षष्ठीसप्तम्यौ चानादरे ॥ ३२ ॥ बहूनां क्रोशतां गतश्चौरः । बहुष्वसाधुषु

---

(१) ल्यबर्थो दृश्यते यत्र ल्यबंतं च न दृश्यते । तत्रैव ज्ञेयो ल्यबलोप इति प्रोक्तं मनीषिभिः ॥ हर्म्यमारुह्य प्रेक्षते आसनमारुह्य प्रेक्षते इत्यर्थः ।

विभक्ति होती है । **जनिकर्तुः**—जायमान (उत्पद्यमान) जो कार्य उसकी प्रकृति (मूल कारण) अपादान संज्ञक है, उस अपादानमें पञ्चमी विभक्ति होती है । **यस्मात्**—जिससे प्रजा उत्पन्न होती है वह ब्रह्म है, ऐसा पण्डित लोग जानते हैं । **अङादि**—आङ् आदिके योगमे भी पञ्चमी विभक्ति होती है । **तादर्थ्ये**-(तच्छब्देन कार्यं निर्दिश्यते । तस्मै=कार्याय, इदं=कारणं, तदर्थं, तस्य भावः तादर्थ्यं, तस्मिन् तादर्थ्ये) तादर्थ्यमे चतुर्थी विभक्ति होती है । **क्रुध्यादि**–क्रुध, द्रुह ईर्ष्या, असूया आदिके योगमें चतुर्थी होती है । **ल्यब्लोपे**–ल्यप्‌के लोप रहने पर कर्म और आधारमे पञ्चमी विभक्ति होती है । **निमित्तात्**—निमित्त (प्रयोजन) वाची कर्मके योगमे सप्तमी विभक्ति होती है । **विषये च**–विषयार्थमें सप्तमी विभक्ति होती है । **षष्ठी सप्तम्यौ**–अनादरमें षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है । **बहूनां**—बहूनां = जनानाम्, क्रोशतां= फूत्कारं कुर्वताम् (सताम्), **चौरः**=तस्करः, गतः = पलायितः ।

निवारयतस्यपि स्वयमार्यो याति साधुमार्गेण। बहुषु साधुषु वसत्स्वपि स्वयमनार्यो यात्यसाधुमार्गेण। मातापित्रोरुदतोः प्रव्रजति पुत्रः ॥ ३२ ॥

अन्योक्ते प्रथमा ॥ ३३ ॥ यदिदं कार्यत्वादन्येनाख्यातेन कृता चोक्तं भवति तदा प्रथमा प्रयोक्तव्या। घटः क्रियते। पटः कार्यः ॥ ३३ ॥

छन्दसि स्यादिः सर्वत्र ॥ ३४ ॥ दध्ना जुहोति। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिः। व्रजतीर्विरेजुः ॥ ३४ ॥ इति कारकप्रक्रिया समाप्ता ॥

—:०:—

अथ समासप्रकरणम्

तत्राऽव्ययीभावः

अथार्थवद्विभक्तिविशिष्टानां पदानां समासो निरूप्यते।

समासश्चान्वये नाम्नाम् ॥ १ ॥ नाम्नामन्वययोग्यत्वे सत्येव (१)

---

(१) अन्वययोग्यत्वे सति। पदानामन्वययोग्यता च द्विविधा व्यपेक्षा-

---

नोट:—'**आधारे च तथा भावे विभक्तिः सप्तमी भवेत्।**
अनादरे च निर्धारे षष्ठी स्यात् सप्तमी तथा ॥

अन्योक्ते—उक्त कर्ममें प्रथमा विभक्ति होती है (जहाँ तृतीयान्त कर्ता होता है वहां कर्म प्रथमान्त रहता है)। **छन्दसि**—वेदमें सब विभक्तियाँ सब विभक्तियोंके अर्थमे होती हैं।

नोटः—छै कारकोके उदाहरण एक साथ निम्न श्लोकमें देखें:—

'रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे।
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामस्य तस्मै नमः ॥
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोस्म्यहम्।
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे हे राम! मामुद्धर ॥

इति कारकप्रकरणम्

—:०:—

समासश्च—नामोंके अन्वययोग्यता रहने पर ही समास होता है। चकारसे तद्धितसम्बन्धी विग्रहका भी ग्रहण करना चाहिये।

समासो भवति । चशब्दात्तद्धितेऽपि भवति । ततो भार्या पुरुषस्येत्यादौ न भवति, परस्परमसम्बन्धात् । सच षड्विधः । अव्ययीभावस्तत्पुरुषो द्वन्द्वो बहुव्रीहिः कर्मधारयो द्विगुश्चेति । तत्र पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः । द्विगुतत्पुरुषौ परपदार्थप्रधानौ । द्वन्द्वकर्मधारयौ चोभयपदार्थप्रधानौ । बहुव्रीहिरन्यपदार्थप्रधानः । तस्य क्रियाभिसम्बन्धादुभयपदप्रधानो बलवान् । यत्रानेकसमासप्राप्तिस्तत्र उभयपदप्रधानो बलवान् । ऐकपद्यमैकस्वर्यमेकविभक्तिकत्वं च समासप्रयोजकम् ।

अधि स्त्री इति स्थिते स्त्रीशब्दाद्द्वितीयैकवचनं अम् । स्त्रीभ्रुवोः । स्त्रियमधिकृत्य भवतीति विग्रहे । अन्वययोग्यार्थसमर्थकः पदसमुदायो विग्रहः । वाक्यमिति यावत् । स्वपदैरन्यपदैर्वा विविच्य कथनं विग्रहः । **कृते समासे अव्ययस्य पूर्वनिपातो वक्तव्यः*** ॥ १ ॥

लक्षणा, एकार्थीभावलक्षणा चेति । तत्र स्वार्थपर्यवसायिनां पदानामाकांक्षाविवशात् याऽन्वययोग्यता सा व्यपेक्षालक्षणा सैव वाक्ये 'राज्ञः पुरुषः' इत्यादौ । एकार्थीभावरूपान्वययोग्यता समासे एव भवति । अत एव वैयाकरणाः समासे विशिष्टा शक्तिरङ्गीकुर्वन्ति । एतेन राजपुरुषः इत्यादौ राजपदस्य 'राजसम्बन्धिनि लक्षणा' इत्यादि यन्नैयायिकैरुच्यते तत्परास्तम् । 'राजपुरुषः' इत्यादौ राजसम्बन्धवान् पुरुष इति समाससदृशवाक्यप्रदर्शनमात्रम् नतु पूर्वपदस्य लक्षणा । किन्तु राजसम्बन्धिकः पुरुषः इति विशिष्टशक्त्यैव बोधः । ननु किम् नाम समासत्वम् इति चेत्—

विभक्तिर्लुप्यते यत्र तदर्थस्तु प्रतीयते ।
एकपद्यं पदानां च समासः सोऽभिधीयते ॥ १ ॥

नोट :—**'एकार्थवाचकतां प्राप्तो भिन्नार्थकाऽनेकपदसमूहः समासः'** अर्थात् दो या अधिक पदोंके एक पदीकरणको समास कहते हैं । वह समास छै प्रकारका है—१ अव्ययीभाव, २ तत्पुरुष, ३ द्वन्द्व, ४ बहुव्रीहि, ५ कर्मधारय और ६ द्विगु । यहां पूर्वपदप्रधान अव्ययी भाव है । द्विगु और तत्पुरुष परपद प्रधान हैं । द्वन्द्व और कर्मधारय पूर्व और पर उभय पद प्रधान है । बहुव्रीहि अन्यपद प्रधान है ।

कृते समासे—समास करने पर अव्यय पदका पूर्वनिपात होता है ।

पूर्वेऽव्ययेऽव्ययीभावः ॥ २ ॥ अव्यये पूर्वपदे सति योऽन्वयः सोऽव्ययीभावसंज्ञकः समासो भवति ॥ २ ॥ इति समाससंज्ञायां सत्याम्—

समासप्रत्यययोर्लुक् ॥ ३ ॥ समासे वर्तमानाया विभक्तेः प्रत्यये च परे लुग् भवति । इत्यमो लुक् । निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभावः । नामसंज्ञायां स्यादिर्विभक्तिः ॥ ३ ॥ अधिस्त्री सि इति स्थिते—

स नपुंसकम् ॥ ४ ॥ सोऽव्ययीभावो नपुंसकलिङ्गो भवति । नपुंसकत्वाद्ध्रस्वत्वम् । अधिस्त्रि ॥ ४ ॥

अव्ययीभावात् ॥५॥ अव्ययीभावात्परस्या विभक्तेर्लुग् भवति । अधिस्त्रि गृहकार्यम् । रायमतिक्रान्तमतिरि कुलम् । नावमतिक्रान्तमतिनु जलम् ॥ **ह्रस्वादेशे सन्ध्यक्षराणामिकारोकारौ च वक्तव्यौ*** । योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः । रूपस्य योग्यं, अनुरूपम् । पदार्थान् व्याप्तुमिच्छा वीप्सा । विष्णुं विष्णुं प्रति प्रतिविष्णु । सादृश्ये तु यथा हरिस्तथा हरः ॥ ५ ॥

यथाऽसादृश्ये ॥ ६ ॥ (१) यथाशब्दोऽसादृश्ये वर्तमानः समस्यते । शक्तिमनतिक्रम्य करोतीति यथाशक्ति ॥ ६ ॥

---

(१) **यथाशब्द इति । यथार्थाश्च—योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति, सादृश्यानि । रूपस्य योग्यं अनुरूपम् । नित्यसमासत्वादस्वपदविग्रहः । अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम् । अत्र पक्षे वाक्यमपि । शक्तिमनतिक्रम्य वर्तत इति यथाक्रमम् । हरेः सादृश्यं सहरि । इत्युदाहरणानि क्रमेण ज्ञेयानि । तत्र सादृश्यार्थकस्य यथाशब्दस्यानेन निषेधः । तदाह—यथाशब्दोऽसादृश्येऽर्थे इति ।**

पूर्वेऽव्यये—अव्यय पूर्वपदक जो समास होता है वह अव्ययीभाव संज्ञक समास कहलाता है । **समासप्रत्ययो**—(अव्ययीभावादि) समासमें वर्तमान विभक्तिका कृदन्त, तद्धित प्रत्ययसे परे भी लुक् होता है । (समासमें वर्तमान का उदाहरण—'अधिस्त्रि' । कृदन्त प्रत्यय पर का उदाहरण 'कुम्भं करोतीति कुम्भकारः' । तद्धित प्रत्यय परका उदाहरण—'उपगोरपत्यमौपगवः') **स नपुंसकम्**—वह अव्ययीभावसमास नपुंसकलिंग होता है । **अव्ययीभावात्**—अव्ययीभाव समाससे पर सभी विभक्तियोंका लुक् होता है । **यथाऽसादृश्ये**—असादृश्य अर्थमें वर्तमान ही यथा शब्द समस्त होता है । (यथा का अर्थ है—

अतोऽमवतः ॥ ७ ॥ अकारान्तादव्ययीभावात्परस्याविभक्तेरम् भवति अतं वर्जयित्वा । कुम्भस्य समीपे उपकुम्भं वर्तते । उपकुम्भं पश्य । अनत इति विशेषणात्पञ्चम्या अम् न भवति ॥ ७ ॥

वा टाङ्योः ॥ ८ ॥ टा ङि इत्येतयोर्वा अम् भवति । उपकुम्भेन कृतं उपकुम्भकृतम् । उपकुम्भं निधेहि । उपकुम्भे निधेहि । उपकुम्भादानय ॥८॥

अवधारणार्थे यावति च ॥ ९ ॥ अवधारणार्थे यावच्छब्दे पूर्वपदे सति अव्ययीभावसंज्ञकः समासो भवति । यावन्त्यमत्राणि (१)सम्भवन्ति तावता ब्राह्मणानभिमन्त्रयस्वेति । यावदमत्रम् । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकं वर्तते ॥

इत्यव्ययीभावः ॥

अथ तत्पुरुषः

(२) **अमादौ तत्पुरुषः** ॥ १ ॥ द्वितीयाद्यन्ते पूर्वपदे सति योऽन्वयः स तत्पुरुषसंज्ञकः समासो भवति । ग्रामं प्राप्तो ग्रामप्राप्तः । दात्रेण छिन्नं दात्रच्छिन्नम् । यूपाय दारु यूपदारु । वृकेभ्यो भयं वृकभयम् । राज्ञः पुरुषो

---

(१) अमत्राणि पात्राणीत्यर्थः (२) अम् प्रत्ययः द्वितीयाविभक्तेर्बोधकः । अम् आदिर्यस्मिन् यस्य वा । एतादृशविभक्तिसमुदायो बोध्यः । तदेवाह—द्वितीयाद्यन्ते इति । तेन सप्तस्वपि विभक्तिषु समासो भवति स च तत्पुरुषसंज्ञकः ।

'योग्यता, वीप्सा, पदार्थानतिवृत्ति और सादृश्य)। **अतोऽमनतः**—अकारान्त अव्ययीभाव समाससे पर पञ्चमी विभक्ति को छोड़कर अन्य सभी विभक्तियोंके स्थानमें अम् आदेश हो जाता है। **वा टाङ्योः**—टा और ङि विभक्तिके स्थानमें विकल्पसे अम् आदेश होता है। **अवधारणेऽर्थे**—अवधारण (निश्चय) अर्थमें वर्तमान यावत् शब्दके पूर्वपद रहने पर अव्ययीभाव समास होता है।

अमादौ तत्पुरुषः—द्वितीया आदि विभक्त्यन्त पदके साथ जो समास होता है वह तत्पुरुष समास कहलाता है।

नोट:—जिस समासमें समस्त पदका अन्तिम खण्ड प्रधान हो और अन्य सभी खण्ड सम्बोधन तथा कर्ता (प्रथमान्त) को छोड़ कर अन्य किसी भी

राजपुरुषः। अक्षेषु शौण्डः अक्षशौण्डः॥ **क्वचिदमाद्यन्तस्य परत्वम्*।** आहिताग्निः। पूर्वं भूतो भूतपूर्वः॥ **समासे क्वचिदैकपद्यं णत्वहेतुः*** शराणां वनं शरवणम्। आम्राणां वनं आम्रवणम्। **पानस्य वा*** सुरपानं सुरापाणम्॥ १॥

नञि॥ २॥ नञि पूर्वपदे सति योऽन्वयः स तत्पुरुषसंज्ञकः समासो भवति। न ब्राह्मणो अब्राह्मणः॥ २॥

नञ्॥ ३॥ समासे सति नञोऽकारादेशो भवति नाकादिवर्जम् (१) नाकः। नपुंसकम्॥ ३॥

अन् स्वरे॥ ४॥ समासे सति नञोऽनादेशो भवति स्वरे परे। अश्वादन्योऽनश्वः। धर्माद्विरुद्धोऽधर्मः। ग्रहणाभावोऽग्रहणमित्यादि। तदन्यतद्विरुद्धतदभावेषु नञ् वर्तते॥ ४॥

इति तत्पुरुषः॥

---

(१) **नाकादिवर्जमिति। आदिशब्दात् नागः नमुचिः नखं नक्षत्रं नपुंसकं नकुलं नगः नक्रः नभ्राट् नासत्यः नाराचः नचिकेताः नापितः नमेरुः ननान्दृ इत्यादयो बोध्याः।**

कारक-विभक्तिका अर्थ लेकर परस्पर सम्बद्ध हो, उसे तत्पुरुष समास कहते है।

क्वचिदमा—क्वचित् प्रयोगमें अमादि विभक्त्यन्त पदका पर प्रयोग (उत्तरपदत्व) होत है। (अग्नौ आहितः = आहिताग्निः। यहाँ सप्तम्यन्त पदका परयोग हो गया है)।

समासे—समासमे क्वचित् एक पदका होना णत्वका कारण है। **पानस्य वा**—पान शब्दके नकारको समासमें णत्व विकल्पसे होता है। **नञि**—नञ् (निषेधार्थक अव्यय) पूर्वपदक जो समास होता है वह भी तत्पुरुषसंज्ञक समास कहलाता है। **नञ्**—समास होने पर नञ्के नकारको अकार आदेश होता है, नाक, नकुल, नासिका आदिके नञ्को छोड़कर। **अन्स्वरे**—समास होनेपर नञ्के स्थानमें अनादेश होता है, स्वर वर्णके परे।

अथ द्वन्द्वः

चार्थे द्वन्द्वः ।। १ ।। समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः तत्रेश्वरं गुरुं च भजस्वेति प्रत्येकमेकक्रियाभिसम्बन्धे समुच्चयसमासो नास्ति । 'बटो भिक्षामट गां चानय' इति क्रमेण क्रियाद्वयसम्बन्धे अन्वाचये च समासो नास्ति । परस्परमसम्बन्धात् । इतरेतरयोगे समाहारे चार्थे द्वन्द्वः समासो भवति । **द्वन्द्वेऽल्पस्वरप्रधाने इकारोकारान्तानां पूर्वनिपातो वक्तव्यः*** अग्निश्च मारुतश्च अग्निमारुतौ । पटुश्च गुप्तश्च पटुगुप्तौ ।। स्त्री च पुरुषश्च स्त्रीपुरुषौ । भोक्ता च भोग्यश्च भोक्तृभोग्यौ । धवश्च खदिरश्च धवखदिरौ । **(१)देवताद्वन्द्वे पूर्वपदस्य दीर्घो वक्तव्यः*** अग्निश्च सोमश्च अग्नीषोमौ । इन्द्रश्च बृहस्पतिश्च इन्द्राबृहस्पती । **अग्न्यादेः सोमादीनां षत्वं वक्तव्यम्*** इतरेतरयोगे द्विवचनम् (२) अग्नीषोमौ । **एकवद्भावो वा समाहारे वक्तव्यः*** शशाश्च कुशाश्च पलाशाश्च शशकुशपलाशाः । तेषां समाहारे शशकुशपलाशम् ।। १ ।।

स नपुंसकम् ।। २ ।। यस्यैकवद्भावः स नपुंसकं भवति ।। **अन्यादीनां**

---

(१) **देवताद्वन्द्वे । वेदे प्रसिद्धसाहचर्याणां देवतावाचकशब्दानां ग्रहणम् । 'ब्रह्मप्रजापती' इत्यादौ पूर्वपदस्य दीर्घो न ।**

(२) **यत्र द्वित्वं बहुत्वं च स द्वन्द्व इतरेतरः ।**
समाहारः स विज्ञेयो यत्रैकत्वं नपुंसकम् ।। १ ।।

चार्थे द्वन्द्वः—चार्थ (इतरेतरयोग और समाहार) में द्वन्द्व समास होता है ।

नोट :—जिस समासमे सभी पद प्रधान हों और उनके बीच का योजक अव्यय (च) लुप्त रहे उसे द्वन्द्व समास कहते हैं ।

द्वन्द्वेऽल्पस्वर—द्वन्द्व समासमें अल्प स्वर प्रधान इकारान्त और उकारान्त शब्दोंका पूर्व निपात होता है । **देवताद्वन्द्वे**—देवतावाचक द्वन्द्वसमासमे पूर्व पदका दीर्घ होता है, विकल्पसे । **अग्न्यादेः**—द्वन्द्वसमासमें अग्न्यादिसे पर सोमादि शब्दके सकारको षकार होता है। **एकवद्भावो**—समाहार द्वन्द्व समासमें एकवद्भाव (एकवचन) विकल्पसे होता है । **स नपुंसकम्**—द्वन्द्व समासमें एकवद्भाव होने पर नपंसकलिङ्ग होता है । **अन्यादीनां**—अन्य,

विभक्तिलोपे कृते पूर्वस्य समागमो वक्तव्यः* अन्यश्च अन्यश्च अन्योन्यम् । परश्च परश्च परस्परम् ॥ २ ॥

इति द्वन्द्वः ॥

—: *:०:* :—

अथ द्विगुः

एकत्वे द्विगुद्वन्द्वौ ॥ १ ॥ एकत्वे वर्तमानौ द्विगुद्वन्द्वौ नपुंसकलिङ्गौ भवतः ॥

संख्यापूर्वो द्विगुः ॥ २ ॥ संख्यापूर्वः समासो द्विगुर्निगद्यते ॥ २ ॥

समाहारेऽत ईप् द्विगुः ॥३॥ समाहारार्थे द्विगुः समासो भवति ततोऽकारान्तादीप्प्रत्ययो भवति । दशानां ग्रामाणां समाहारो दशग्रामी । अकारान्तो द्विगुः स्त्रिया भाष्यते । पञ्चाग्नयः समाहृता इति पञ्चाग्नि । पञ्चानां गवा समाहारः पञ्चगु । नपुंसकत्वाद्ध्रस्वत्वम् । त्रिफलेति। रूढिः । **पात्रादीनामीऽप्रतिषेधो वक्तव्य*** पञ्चपात्रम् ॥ ३ ॥

इति द्विगुः ॥

—०—

पर आदि शब्दके साथ समास होने पर पूर्व पद को सुक् का आगम होता है ।

एकत्वे द्विगुद्वन्द्वौ—एकत्वमे वर्तमान द्विगु और द्वन्द्व समास नपुंसक लिङ्ग होते है । **संख्यापूर्वो**—संख्यावाची पूर्वपदके साथ जो समास होता है वह द्विगु समास कहलाता है ।

नोट :—कर्मधारय सामासिक शब्द का पूर्व पद संख्यावाचक होनेसे द्विगु समास कहलाता है । यह समास प्रायः समाहार अर्थमें और एकवचनान्त नपुंसक लिंग होता है । इसके बहुतसे समस्त पद नियमित रूपसे बनते हैं । जैसे—त्रिलोकी । पञ्चगवम् आदि आदि ।

समाहारे—समाहार—(एकीकरण) अर्थमे द्विगु समास होता है और समास होने पर अकारान्तसे स्त्रीलिंगमें इप् प्रत्यय होता है । **पात्रादीनां**—पात्राद्यन्त द्विगु समासमें इप् प्रत्यय नहीं होता है ।

अथ बहुव्रीहिः

बहुव्रीहिरन्यार्थे ॥ १ ॥ अन्यपदार्थे प्रधाने यः समासः स बहुव्रीहिसंज्ञकः समासो भवति । बहु धनं यस्य स बहुधनः । अस्ति धनं यस्य स अस्तिधनः । यस्य प्रधानस्यैकदेशो विशेषणतया यत्र ज्ञायते स तद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः । यथा लम्बौ कर्णौ यस्य सः लम्बकर्णः ॥ **बहुव्रीहौ विशेषणसप्तम्यन्तयोः पूर्वनिपातो वक्तव्यः*** कण्ठे कालो यस्यासौ कण्ठकालः । करे धनं यस्य स करधनः ॥

नेन्द्वादिभ्यः ॥२॥ सप्तम्यन्तस्य पूर्वनिपातो न भवति (१) इन्दुशेखरः । चक्रपाणिः । पद्मनाभः । कपिध्वजः ॥ २ ॥

---

(१) इन्दुशेखर इति । इन्दुश्चन्द्रमाः शेखरे मौलौ यस्य सः । चक्रं पाणौ यस्य सः । पद्मं नाभौ यस्य स इति विग्रहः । अत्र नाभिशब्दस्य समासान्ते 'ड' प्रत्ययः । डित्वाट्टिलोपः । कपिः ध्वजे यस्य स इति ।

बहुव्रीहि—अन्य पदार्थमें प्रधान जो समास वह समास बहुव्रीहि समास कहलाता है ।

नोट :—जिन समस्त शब्दोंमें किसी एक शब्दकी विशेषता न हो, किन्तु समुदायसे ही विशेष अर्थ प्रतिभासित हो, उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं । जैसे—पीत अम्बर है जिसका वह पीताम्बर (कृष्ण भगवान्) कहलाता है । कमलके ऐसा नयन है जिसका वह 'कमलनयन' कहलाता है । बहुव्रीहि समास निष्पन्न विशेषणमें विशेषणसूचक प्रत्यय प्रायः नहीं रहता है । जैसे—निर्धन और निरपराध शब्द बहुव्रीहिमें 'निर्धनी, निरपराधी हो जाता है । शब्दान्तरकी विशेषणता या विशेष अर्थ नहीं होने पर बहुव्रीहि समासके शब्द यत्र तत्र कर्मधारय वा द्विगु समासमे परिणत हो जाते हैं । जैसे—पीताम्बर का पीला वस्त्र ऐसा अर्थ करने पर (पीतश्चासौ अम्बरः) कर्मधारय समास होता है । एवं चतुर्भुजका विष्णु भगवान् अर्थ नहीं कर 'चार भुजायें' ऐसा अर्थ करनेसे (चतुर्णां भुजानां समाहारः) द्विगु समास होता है । (इससे अधिक 'सन्धिचन्द्रिका' में देखो) ।

बहुव्रीहौ—बहुव्रीहि समासमें विशेषण और सप्तम्यन्त पदका प्रयोग होता है । नेन्द्वादिभ्यः—इन्दुशेखर, चक्रपाणि, दण्डपाणि, पद्मनाभ इत्यादि

प्रजामेधयोरसुक् ॥ ३ ॥ सुप्रजाः सुमेधाः दुर्मेधाः । 'अत्वसोः सौ' इती दीर्घः ॥

धर्मादन् ॥ ४ ॥ सुष्ठु धर्मो यस्य सः सुधर्मा ॥ ४ ॥

अन्यार्थे ॥ ५ ॥ स्त्रीलिङ्गस्यान्यार्थे वर्तमानस्य ह्रस्वो भवति ॥ ५ ॥

पुंवद्वा ॥ ६ ॥ समासे सति समानाधिकरणे (१) पूर्वस्य स्त्रीशब्दस्य पुंवद्भावो वा भवति । पुंवद्भावादीपो निवृत्तिः । रूपवती भार्या यस्य स रूपवद्भार्यः । (२) वाग्रहणात् कल्याणीप्रिय इत्यादौ न भवति ॥ ६ ॥

गोः ॥७॥ गोशब्दस्यान्यार्थे वर्तमानस्य ह्रस्वो भवति । पञ्च गावो यस्य स पञ्चगुः ॥ **सङ्ख्यासुव्याघ्रादिपूर्वस्य पदशब्दस्याल्लोपो वक्तव्यः*।** सहस्रं पादा यस्य स सहस्रपात् । शोभनौ पादौ यस्य स सुपात् । व्याघ्रस्य पादाविव पादौ यस्य स व्याघ्रपात् । द्वौ पादौ यस्य स द्विपात्, द्विपादौ द्विपादः । द्विपादं द्विपादौ ॥ **शसादौ स्वरे परे पदादेशश्च वक्तव्यः* ।** द्विपदः द्विपदा द्विपाद्भ्याम् द्विपाद्भिः । इत्यादि ॥ ७ ॥

---

(१) **व्यवस्थितविभाषा बोधकः । तेन यत्र प्रयोगे पुंवद्भावनिमित्तक-कार्यं भवति तत्र तत्प्रयोगे नित्यमेव भवति, यत्प्रयोगे नास्ति तत्र नित्यमेव नास्तीति भावः ।**

(२) **एकविभक्त्यन्तानां विशेष्यविशेषणभावेन एकार्थनिष्ठत्वम् सामाना-धिकरण्यम् । समानानामधिकरणानां भाव इति व्युत्पत्तेः ।**

स्थलोंमें सप्तम्यन्तका पूर्व प्रयोग नहीं होना है । **प्रजामेधयोरसुक्**—बहुव्रीहि समासमें प्रजा और मेधा शब्दको असुक्का आगम होता है । **धर्मादन्**—बहुव्रीहि समासमे धर्म शब्दसे अन् प्रत्यय होता है । **अन्यार्थे**—अन्यार्थ (गौणत्व) में वर्तमान स्त्रीप्रत्ययान्तका ह्रस्व होता है । **पुंवद्वा**—बहुव्रीहि समास होने पर समानाधिकरणमें पूर्वपठित स्त्रीवाचक शब्दका पुंवाचकके तुल्य रूप होता है । गोः—अन्यार्थमें वर्तमान गोशब्दान्तका ह्रस्व होता है । **संख्यासु**—संख्यार्थक एक, द्वि, त्रि, आदि तथा शोभनार्थक सु (अव्यय) और व्याघ्र आदि पूर्वपदक पाद शब्दके अकारका लोप होता है । **शसादौ**—शसादि स्वर वर्णके परे पादके स्थान पदादेश भी होता है ।

टाडकाः ॥ ८ ॥ समासे सति ट अ ड क इत्येते प्रत्यया भवन्ति। अचिन्त्यो महिमा यस्य असौ अचिन्त्यमहिमः।

'टश्च तत्पुरुषे ज्ञेयोऽकारो द्वन्द्व एव च।
डकारश्च बहुव्रीहौ ककारोऽनियमो मतः (१) ॥'

अचिन्त्यो महिमा यस्य सोऽचिन्त्यमहिमः ॥ ८ ॥

नो वा ॥ ९ ॥ नान्तस्य पदस्य टेर्लोपो वा भवति यकारे स्वरे च पर, वाग्रहणात् क्वचिन्न भवति। उपधालोपश्च। अह्नो मध्यं मध्याह्नः। कवीनां राजा कविराजः। टकारानुबन्ध ईबर्थः। कविराजी। राज्ञां पूः राजपुरम्। वाक् च मनश्च वाङ्मनसम्। दक्षिणस्यां दिशि पन्थाः दक्षिणापथः। अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रम्। द्वौ च त्रयश्च परिमाणं येषां ते द्वित्राः। पञ्च च षट् च परिमाणं येषां ते पञ्चषाः। बहवो राजानो यस्यां नगर्या सा बहुराजा नगरी। अत्र टिलोपे कृते 'आबतः स्त्रियाम्' इत्याप्। बहवः कर्तारो यस्य स बहुकर्तृकः ॥ ९ ॥

कर्मधारयस्तुल्यार्थे ॥ १० ॥ पदद्वये तुल्यार्थे एकार्थनिष्ठे सति कर्मधारयः समासो भवति। नीलं च तदुत्पलं च नीलोत्पलम्। रक्ता चासौ

---

(१) ककारोऽनियमो मत इति। विकल्पेनेत्यर्थः।

टाडकाः—तत्पुरुष, द्वन्द्व, बहुव्रीहि और कर्मधारय समास होने पर यथाक्रम से ट, अ, ड और क प्रत्यय होते है।

नो वा—नकारान्त पदके टिका लोप होता है स्वर और यकारके परे।

कर्मधारयस्तुल्यार्थे–(तुल्यः=सदृशः (एक एव), अर्थः=अभिधेयः, वाच्यं प्रयोजनं यस्य स तुल्यार्थः तस्मिन्–तुल्यार्थे) पूर्व और उत्तर दोनों पदका एकार्थवाचक होने पर जो समास होता है वह कर्मधारय समास कहलाता है।

नोट :–जिस समासमें विशेष्य-विशेषण या उपमान–उपमेयके समानाधिकरण (विशेष्य–विशेषणभावापन्न) का बोध होता है उसे कर्मधारय समास कहते हैं। इसमें उत्तर पदका अर्थ प्रधान रहता है। यथा–नीलोत्पल, चन्द्रमुख आदि।

लता च रक्तलता। पुमांश्चासौ कोकिलश्चेति पुंस्कोकिलः। **पुंसः खपे संयोगान्तलोपो वक्तव्यः*** पुंक्षीरम् ॥ १० ॥

नाम्नश्च कृता समासः ॥ ११ ॥ प्रादेरुपसर्गस्य नाम्नश्च कृदन्तेन समासस्तत्पुरुषो भवति। प्रकृष्टो वादः प्रवादः। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः ॥

सहादेः सादिः ॥ १२ ॥ समासे सति सहादीनां सादिर्भवति। पुत्रेण सह वर्तत इति सपुत्रः। सह सम् तिरसां, सध्रि समि तिरयः। सह अञ्चतीति सध्रयङ्। समम् अञ्चतीति सम्यङ्। तिरः अञ्चतीति तिर्यङ् ॥१२॥

कोः कदादिः ॥ १३ ॥ कुशब्द कुत्सितेषदर्थयोस्तत्पुरुषे कत् कव का आदेशा भवन्ति। कुत्सितं अन्नं कदन्नम्। ईषदर्थे। ईषदुष्णं कवोष्णं कोष्णम्। कालवणम्। कोर्मन्दादेशश्च। मन्दोष्णम्। रथवदयोश्च। कद्रथः। कद्वदः ॥ १३ ॥

पुरुषे वा ॥ १४ ॥ कुपुषः कापुरुषः ॥ १४ ॥

पथ्यक्षयोः ॥ १५ ॥ कोः कादेशः स्यात्। कुपथः कापथः। कु अक्षः काक्ष ॥ १५ ॥

ईषदर्थे च ॥ १६ ॥ ईषज्जलं काजलम्।

षड्भिरधिका दश षोडश। षट् दन्ता यस्य षोडन्। षष् दन्त इति स्थिते। **वयसि दन्तस्य दतृ***। ऋ इत् षस्य उत्वं दस्य डः। 'कृतो नुम्'

पुंसः खपे–खप् प्रत्याहारके परे पुंस् शब्दके संयोगान्तका लोप होता है। **नाम्नश्च**–प्रादि उपसर्गका और नामका जो कृदन्तके साथ समास होता है वह तत्पुरुष संज्ञक समास कहलाता है **सहादेः सादिः**–समास होने पर सह, सम् और तिरस्के स्थानमें यथाक्रमसे सध्रि, समि और तिरि आदेश होते है। **कोः कदादिः**–तत्पुरुषसमासमे कुत्सित (निन्दित) और ईषत् (थोड़े) अर्थमे वर्तमान कु शब्दको कत्, कव और का आदेश होता है। **पुरुषे**–पुरुष शब्दके परे कु को कादेश विकल्प से होता है। **पथ्यक्षयोः**–पथिन् और अक्ष शब्दके परे कु का का विकल्पसे आदेश होता है। **ईषदर्थे च**–ईषत् अर्थमे कु शब्दको कादेश भी होता है।

वयसि–समासान्तमे वयस् गम्यमान होने पर दन्त शब्दको दतृ आदेश होता है।

षोडन् । षट् प्रकाराः षोढा । **संख्यायाः प्रकारे धा** । धस्य ढः । **षष उत्वं दतृदशधासूत्तरपदादेः ष्टुत्वं च भवतीति वक्तव्यम्*** **बृहच्छब्दस्य सुडागमस्तलोपश्च*** बृहतां पतिः बृहस्पतिः ॥ १६ ॥

महतष्टेरात्वम् ॥ १७ ॥ महच्छब्दस्य टेराकारः समानाधिकरणे । महादेवः महेश्वरः ॥ १७ ॥

दिवो द्यावा ॥ १८ ॥ दिवच्छब्दस्य द्यावादेशः ।

द्यौश्च भूमिश्च द्यावाभूमी । आकृतिगणोऽयम् **जायाया जम्भावो दम्भावश्च निपात्यते** । दम्पती जम्पती । क्वचिज्जायापती आकृतिगणोऽयम् ।

अलुक् क्वचित् ॥ १९ ॥ क्वचित्समासे कृदन्ते तद्धितेऽपि विभक्तेरलुग् भवति । कृच्छ्रान्मुक्तः । अप्सु योनिरस्येत्यप्सुयोनिः । उरसि लोम यस्यासौ उरसिलोमा(१) । हृदि स्पृशतीति हृदिस्पृक् । कण्ठे कालो यस्यासौ कण्ठेकालः वाचोयुक्तिः । दिशोदण्डः । पश्यतो हरः । वनेचरः । खेचरः । **समानाधिकरणे शाकपार्थिवादीनां मध्यमपदलोपो वक्तव्यः*** । शाकः प्रियः यस्य सः शाकप्रियः । शाकप्रियश्चासौ पार्थिवश्च शाकपार्थिवः । देवपूजको ब्राह्मणो देवब्राह्मणः ॥

आदेश्च द्वन्द्वे ॥ २० ॥ द्वन्द्वे समासे पूर्वपदस्य लोपो भवति । चकार-

---

(१) उरसिलोमा । अत्र समासान्ते विहिताः 'ट अ ड का' प्रत्यया अपि न भवन्ति ।

संख्यायाः—प्रकार अर्थमें संख्यावाचक शब्दसे धा प्रत्यय होता है ।

षष उत्वं—दतृ, दश और धाके परे षष् शब्दको उत्व और उत्तर पदके आदिको ष्टुत्व होता है । **बृहच्छब्दस्य**—बृहत् शब्दको सुट्का आगम और तकारका लोप होता है । **महतष्टेरात्वम्**—महत् शब्दके 'टि' को आकार होता है, समानाधिकरणमें (**एकपदविभक्तिवाचित्वं समानाधिकरणत्वम्**) । **दिवो द्यावा**—दिव् शब्दको द्यावा आदेश होता है, समानाधिकरणमें । **अलुक् क्वचित्**—कहीं समासमें और तद्धित प्रत्ययके परे और कृदन्तमें भी पूर्वपदस्थ विभक्तिका लोप नहीं होता है ।

समानाधि—समास होने पर समानाधिकरणमें शाकपार्थिवादिके मध्यमपदका लोप होता है । **आदेश्च**—द्वन्द्व समासमें आदि पदका लोप होता है ।

ग्रहणात् विकल्पेन । माता च पिता च पितरौ । शिष्यमाणो लुप्यमानार्थाभिधायी । श्वश्रूश्च श्वशुरश्च श्वशुरौ । दुहिता च पुत्रश्च पुत्रौ ॥ २० ॥

ऋतां द्वन्द्वे ॥ २१ ॥ द्वन्द्वे समासे पूर्वपदस्य ऋकारस्य वा आकारो भवति (१) माता च पिता च मातापितरौ ॥ २१ ॥

द्वन्द्वे सर्वादित्वं वा ॥२२॥ द्वन्द्वे समासे सर्वादित्वं वा भवति । वर्णाश्च आश्रमाश्च इतरे च वर्णाश्रमेतरे वर्णाश्रमेतराः । **व्यधिकरणे बहुव्रीहौ । मध्यमपदलोपो (२) वक्तव्यः*** कुमुदस्य गन्ध इव गन्धो यस्य सः कुमुदगन्धिः । चकाराद् गन्धशब्दस्य समासान्त इकारः ॥ २२ ॥

उपमानाच्च ॥ २३ ॥ उपमानात्परस्य गन्धशब्दस्येकारो भवति ॥ हंसस्य गमनमिव गमनं यस्याः सा हंसगमना ॥ २३ ॥

दिक्संख्ये संज्ञायाम् ॥ २४ ॥ दिग्वाचकसंख्यावाचकशब्दौ संज्ञायां विषये परपदतुल्यार्थौ समस्येते स समासस्तत्पुरुषो भवति । संज्ञायामित्यनेन नित्यसमासो दर्शितः । अविग्रहोऽस्वपदविग्रहो वा नित्यसमासः । दक्षिणाग्निः । सप्तग्राम इति (३) इति समासप्रक्रिया समाप्ता ।

---

(१) ऋकारस्य वा आकारो भवति । द्वयोः पदयोः समासे कृते इदमुदाहरणम् । यदि च याता च माता च स्वसा च दुहिता च एतेषां द्वन्द्वे कृते यातृसामातृस्वादुहितर इत्येव भवति । यदि तु द्वयोर्द्वयोर्द्वन्द्वं कृत्वा ततो द्वयोर्द्वन्द्वे सर्वेषामपि आत्वं भवति यातामातास्वसादुहितर इति ।

(२) मध्यमपदलोपो वक्तव्यश्चेति । कर्मधारयेऽपि मध्यमपदलोपो भवति यथा शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः । देवपूजको ब्राह्मणः देवब्राह्मणः । चकारद् गन्धशब्दस्य समासान्ते इकारः । (३) सप्तग्राम इति ।

ऋतां—द्वन्द्व समासमे पूर्वपदस्थ ऋकारका आकार आदेश होना है, विकल्पसे । **द्वन्द्वे**—द्वन्द्व समासमे सर्वादित्व विकल्पसे होना है ।

व्यधिकरणे—व्यधिकरण बहुव्रीहिमे मध्यम पदका लोप होना है ।

उपमानाच्च–उपमानवाची गन्ध शब्दसे 'इ' प्रत्यय होता है ।

दिक्संख्ये—दिग्वाची और सख्यावाचीका संज्ञामें ही समानाधिकरण सुबन्तके साथ समास होता है । इति समासप्रकरणम् ।

अथ तद्धितप्रकरणम्

अथ तद्धितो (१) निरूप्यते ।

अपत्येऽण् ॥ १ ॥ नाम्नोऽपत्येऽर्थे अण् प्रत्ययो भवति । उपगोरपत्यमिति वाक्ये उपगु अण् इति स्थिते 'समासप्रत्यययोः' इति षष्टीलोपः । णकारो वृद्धयर्थं ईवर्थश्च ॥

आदिस्वरस्य ञ्णिति च वृद्धि ॥ २ ॥ स्वराणां मध्ये य आदिस्वरस्तस्य वृद्धिर्भवति ञिति णिति च तद्धिते परतः । उकारस्य औकारो वृद्धिः ॥ २ ॥

वोऽव्यस्वरे ॥ ३ ॥ उकारस्यौकारस्य वा अव् भवति यकारे स्वरे च परे । औपगवः । वासिष्ठः । गौतमः ॥ **शिवादिभ्यश्चाण्वक्तव्यः*** शैवः । वैदेहः ॥

ऋ उरणि ॥ ४ ॥ ऋकारस्य उर् भवति अणि परे ॥

षषो णो मातरि ॥ ५ ॥ षषः षकारस्य नकारादेशो भवति मातृशब्दे परे । षाण्मातुरः (२) द्वयोर्मात्रोरपत्यं द्वैमातुरः ॥ ५ ॥

पूर्वेऽव्ययेऽव्ययीभावो, ऽमादौ तत्पुरुषः स्मृतः । चकारबहुलो द्वन्द्वः, संख्यापूर्वो द्विगुःस्मृतः ॥ यस्य येषां बहुव्रीहिः, स चासौ कर्मधारयः । इति किञ्चित् समासानां षण्णां लक्षणमीरितम् । (१) जात्यभिप्रायेणैकवचनम् । तस्य उक्तसमासस्य–उक्तनाम्नां च अर्थान्तरबोधकत्वेनहिताः हितकारकास्ते तद्धिता इत्यर्थः । (२)षण्णां मातृणामपत्यमिति विग्रहः । 'षाण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः क्रौंचधारिण' इत्यमरः । अन्यत्रापि 'अण्' भवति यथा रागान्नक्षत्रयोगाच्च समूहात्सास्यदेवता । तद्वेत्त्यधीते तस्येदमेवमादिष्वणिष्यते ।

अपत्येऽण्—षष्ठयन्त नामसे अपत्य अर्थमें अण् प्रत्यय होता है । **आदिस्वरस्य**—स्वरोंके मध्यमे आदि स्वरकी वृद्धि होती है, ञित्, णित् तद्धित प्रत्ययके परे । **वोऽव्यस्वरे**—उकार वा ओकारको अव् आदेश हो, यकारके परे और स्वरके परे । **शिवादिभ्यः**—शिवादि से भी अपत्य अर्थमें अण् प्रत्यय होता है । **ऋ उरणि**—ऋकारको उर् (उकार) हो, अण् प्रत्ययके परे । **षषो णो**—षष् सम्बन्धी षकारको नकार होता मातृ शब्दके परे ।

अत इञनृषेः ॥ ६ ॥ अकारान्तान्नाम्नोऽनृषिशब्दादपत्येऽर्थे इञ् प्रत्ययो भवति (१)। यस्य लोपः। देवदत्तस्यापत्यं दैवदत्तिः। श्रीधरस्यापत्यं श्रैधरिः। दशरथस्यापत्यं दाशरथिः। पुरन्दरस्यापत्यं पौरन्दरिः ॥ ६ ॥

बाह्वादिभ्यश्च ॥ ७ ॥ औडुगविः। कार्ष्णिः। औडुलोमिः। आग्निशर्मिः ॥ ७ ॥

ण्यायनणेयण्णीया गर्गनडात्रिस्त्रीपितृष्वस्रादेश्च ॥ ८ ॥ गर्गादेर्नडादेरत्र्यादेः स्त्रीलिङ्गान् पितृस्वस्रादेश्च ण्य आयनण् एयण् णीय इत्येते प्रत्यया भवन्ति अपत्येऽर्थे। गर्गस्यापत्यं गार्ग्यः। वत्सस्यापत्यं वात्स्यः। नडस्यापत्यं नाडायणः। चरस्यापत्यं चारायणः। अत्रेरपत्यं आत्रेयः। गङ्गाया अपत्यं गाङ्गेयः। मह्या अपत्यं माहेयः। कपेरपत्यं कापेयः॥ **मातृपितृभ्यां स्वसुः सस्य षत्वं वक्तव्यम्*** मातृष्वस्रीयः पैतृष्वस्रीयः ॥ ८ ॥

अलुक् क्वचित् ॥ ९ ॥ क्वचित् समासनिमित्तविभक्तेर्लुङ् न। अमुष्य अपत्यं आमुष्यायणः (२) ॥ ९ ॥

पितृमातृभ्यां व्यडुलौ ॥ १० ॥ पितुर्भ्राता पितृव्यः। मातुलः ॥ १० ॥

पितुर्डामहन् ॥११॥ पितुः पिता पितामहः। पितुर्माता पितामही ॥११॥

लुग्बहुत्वे क्वचित् ॥ १२ ॥ अपत्येऽर्थे उत्पन्नस्य प्रत्ययस्य बहुत्वे सति

---

(१) सर्वत्र तद्धिते विकल्पानुवृत्तिर्ज्ञेया। तेन स्वयम्भुवः इत्यत्र स्वयम्भोः अपत्यमित्यर्थे अणि 'वोऽव्यस्वरे' इत्यनेन अवादेशो न। वसुदेवस्यापत्यमिति विग्रहे 'अत इञनृषे' इत्यनेन इञ् न किन्तु अणेव। वासुदेवः।

(२) आमुष्यायणः प्रख्यातपुत्र इत्यर्थः।

अत—ऋषिवाचक शब्दको छोडकर अकारान्त नामसे अपत्य अर्थमें इञ् प्रत्यय होता है। **बाह्वादिभ्यश्च**—बाह्वादिसे इञ् प्रत्यय हो, अपत्य अर्थमें। **ण्यायनणे**—गर्गादि, नडादि, अत्र्यादि तथा स्त्रीलिंगमें और पितृष्वस्रादिसे अपत्य अर्थमें ण्य, आयनण्, एयण् और णीय प्रत्यय यथाक्रमसे होते हैं। **मातृपितृभ्यां स्वसु**—मातृ और पितृ शब्दसे पर स्वसृ शब्दके सकारको षकार होता है। **अलुक्**—(समासप्रकरण देखो)। **पितृमातृ**—पितृ और मातृ शब्द से व्यड् और उल् प्रत्यय होते हैं। **पितुर्डामहन्**—पितृशब्दसे डामहन् प्रत्यय होता है। **लुग्बहुत्वे**—अपत्य अर्थमें विहित अणादि प्रत्ययका

क्वचिदृष्यनृषिविषये च लुग् भवति। गर्गाः। वसिष्ठाः। अत्रयः। विदेहाः ॥ १२ ॥

देवतेदमर्थे ॥ १३ ॥ देवतार्थे इदमर्थे चोक्ता प्रत्यया भवन्ति। इन्द्रो देवता अस्येति ऐन्द्र हविः। सोमो देवता अस्येति सौम्यम्। देवदत्तस्य इदं दैवदत्त वस्त्रम् ॥ १३ ॥

क्वचिद्द्वयोः ॥ १४ ॥ पूर्वपदोत्तरपदयोः क्वचिद्वृद्धिर्भवति। अग्नि-मरुतौ देवताऽस्येति आग्निमारुतं कर्म। सुहृदो भावः सौहार्दम्। अत्र **भावे अण् वक्तव्यः*** ॥ १४ ॥

णितो वा ॥ १५ ॥ उक्ताः प्रत्यया विषयान्तरे णितो वा भवन्ति। अजो गौ यस्य सः आजगुः शिवस्येदं धनुः आजगवं अजगवं वा। कुमुदस्य गन्ध इव गन्धो यस्य सः कुमुदगन्धः। तस्यापत्यं स्त्री कौमुदगन्ध्या(१)। आवतः स्त्रियाम्' इत्याप्प्रत्ययः। श्वशुरस्यायं श्वाशुर्यो ग्रामः। विष्णोरिदं वैष्णवम्। गोरिदं गव्यम्। कुलस्य इदं कुल्यम् ॥ १५ ॥

त्वन्मदेकत्वे ॥ १६ ॥ तव इदं त्वदीयम्। मम इदं मदीयम् ॥ १६ ॥

---

(१) **कौमुदगन्ध्या इत्यत्र नित्यमेव वृद्धिः यत्र वृद्ध्यादिकार्यं नास्ति, तत्र वृद्धिनिमित्तकण्यादिप्रत्यय एव न। यथा गोरिदं 'गव्यम्' इत्यत्र य प्रत्ययः। एवमेव कुलमित्यत्र। अजगवमित्यत्र अण् अच् प्रत्ययौ कार्यौ तेन यत्र वृद्धिः तत्राण्। आजगवमिति। यत्र वृद्धिर्नास्ति तत्र अच्। अजगवमिति। एवं च प्रत्ययानां णित्वाभावकथनमप्रयोजकम् किन्तु अननुगमितणित्वाणि-त्वादिकार्यापेक्षया इदमेव वक्तुं योग्यम्। इति सुधयो विभावयन्तु।**

बहुवचनमे क्वचित् ऋषिभिन्न विषयमे और क्वचित् ऋषिविषयमें भी लुक् होता है। **देवते**—देवता अर्थमे और इदम् अर्थमें भी अणादि प्रत्यय होते हैं। **क्वचिद्द्वयोः**—क्वचित् पूर्व पदके आदिकी और क्वचित् उत्तर पदके आदिकी वृद्धि होती है 'ञित्, णित् स्वरके परे। **भावे**—भावमे अण् प्रत्यय विकल्पसे होता है। **णितो वा**—अणादि प्रत्यय विषयान्तरमे णित् विकल्पसे होता है। **त्वन्मदेकत्वे**—णीय प्रत्ययके परे एकत्व रहने पर युष्मत्, अस्मत् शब्दको यथाक्रमसे त्वत्-मत् आदेश होता है।

चतुरश्च लोपः ॥ १७ ॥ चतुर्शब्दस्य चकारस्य लोपो भवति ण्यणीययोः परतः । तुर्यः तुरीयः ॥ १७ ॥

अन्यस्य दक् ॥ १८ ॥ अन्यशब्दस्य दगागमो भवति णीयप्रत्यये परे ॥ अन्यस्येद अन्यदीयम् । अर्धजरत्या इदं अर्धजरतीयम् ॥ १८ ॥

कारकात्क्रियायुक्ते ॥ १९ ॥ कारकादप्येते प्रत्यया भवन्ति क्रियायुक्ते कर्तरि कर्मणि चाभिधये कुङ्कुमेन रक्तं कौङ्कुमम् । मथुराया आगतो माथुरः । ग्रामे भवः ग्राम्यः । धुरं वहतीति धुर्यः धौरेयः ॥ १९ ॥

केनेयेकाः ॥ २० ॥ क, इन, इय, इक, इत्येते प्रत्यया भवन्ति भवाद्यर्थेषु । णित्वं चैषां वैकल्पिकम् । कर्णाटे भवः कार्णाटकः कर्णाटको वा । ग्रामादागतस्तत्र जातो ग्रामीणः ग्राम्यः । सध्रीचि भवः सध्रीचीनः । समीचि भवः समीचीनः । तिरश्चि भवः तिरश्चीनः ॥ २० ॥

यलोपश्च ॥ २१ ॥ क्वचिद्यकारलोपो भवति । (१) कन्यायाः जातः कानीनः । **नक्षत्रादण् वक्तव्यः*** पुष्येण युक्ता पौर्णमासी पौषी । पौष्यां भवः पौषीणः ॥ २१ ॥

इयो वा ॥२२॥ क्षनात् त्रायन इति क्षत्त्रम् । **क्षत्त्रशब्दादण् वक्तव्यः***

---

(१) याकारलोपो भवतीति । मत्सस्य यस्य स्त्रीकारे ईपि वाऽगस्त्यसूर्ययोः । तिष्यपुष्ययोर्नक्षत्रे च अणि यस्य विभञ्जना ॥ मत्सी आगस्ती सूरी इत्यादयः ।

चतुरश्च लोप—चतुर् शब्दके चकार का लोप होता है, ण्य और णीय प्रत्ययके परे । **अन्यस्य दक्**—अन्य शब्दको दक्का आगम होता है णीयप्रत्ययके परे । **कारकात्**—कर्ता, कर्म, करण आदि कारकसे भी अणादि प्रत्यय होते है, क्रियायुक्त कर्ता और कर्मके अभिधेय रहने पर । **केनेयेकाः**—भव आदि अर्थोमे क, इन, इय और इक प्रत्यय होते हैं और ये प्रत्यय विकल्पसे णित् होते है । **यलोपश्च**—किसी प्रयोगमे तद्धित प्रत्ययके परे उपधाभूत यकारका लोप होता है । **नक्षत्रादण् वक्तव्यः**—नक्षत्रवाचक शब्द से अण् प्रत्यय होता है । **इयो वा**—भवादि अर्थमे इय प्रत्यय विकल्प से होता है । **क्षत्त्रशब्दात्**—क्षत्त्रशब्द से (इय प्रत्यय के अभाव पक्षमें)

क्षत्त्रात् भवः क्षत्त्रियः क्षात्त्रः। शुक्राज्जातं शुक्रियम्। इन्द्राज्जातं इन्द्रियम् (१)। अक्षैर्दीव्यतीति आक्षिकः। शब्दं करोतीति शाब्दिकः। तर्कं करोतीति तार्किकः। वेदे जाता वैदिकी स्तुतिः ऋग्वा ॥ २२ ॥

किमादेस्त्यतनौ ॥२३॥ किमादेरद्यादेर्भवाद्यर्थेषु त्यतनौ प्रत्ययौ भवतः। कुत्र भवः कुत्रत्यः। कुतस्त्यः। अद्य भवः अद्यतनः। ह्यो भवः ह्यस्तनः। श्वो भवः श्वस्तनः। सदा भवः सदातनः (२)॥ **दक्षिणापश्चात्पुरसस्त्यण् वक्तव्यः***। दाक्षिणात्यः। पाश्चात्त्यः। पौरस्त्यः ॥ २३ ॥

स्वार्थेऽपि ॥ २४ ॥ उक्ताः प्रत्ययाः स्वार्थेऽपि भवन्ति। देवदत्त एव दैवदत्तकः। चत्वार एव वर्णाः चातुर्वर्ण्यम्। चोर एव चौरः। **भागरूपनामभ्यो धेयः स्वार्थेऽपि***। भागधेयः। रूपधेयः। नामधेयः ॥ २४ ॥

अणीनयोर्युष्मदस्मदोस्तवकादिः ॥ २५ ॥ अणीनयोर्युष्मदस्मदोस्तवकादय आदेशा भवन्ति। तव इदं तावकम्। मम इदं मामकम्। तावकीनः मामकीनः। यौष्माकः। आस्माकः। यौष्माकीणः। आस्माकीनः ॥२५॥

वत्तुल्ये ॥ २६ ॥ सादृश्ये वत्प्रत्ययो भवति। चन्द्रेण तुल्यं चन्द्रवन्मुखम्। घटेन तुल्यं घटवदुदरम्। पटवत्कम्बलम् ॥ २६ ॥

भावे तत्वयणः ॥ २७ ॥ शब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं भावस्तस्मिन्भावे त, त्व, यण् इत्येते प्रत्यया भवन्ति। ब्राह्मणस्य भावो ब्राह्मणता। त्वयणौ नपुंसकलिङ्गे भवतः। ब्राह्मणत्वं ब्राह्मण्यम्। सुमनसो भावः सौमनस्यम्। सुभगस्य भावः सौभाग्यम्। विदुषो भावः वैदुष्यम् ॥ २७ ॥

---

(१) **इन्द्रियमिति। इन्द्रस्यात्मनः प्रत्यक्षज्ञानकरणम्।**

(२) **दोषातनम्, सायंतनम् चिरंतनम् पुरातनं प्राक्तनमित्यादि।**

अण् प्रत्यय होता है। **किमादे**–भावार्थ में किम् आदि से और अद्य आदि मे तन् प्रत्यय होता है। **दक्षिणा**–दक्षिणा, पश्चात् और पुरस् शब्द से त्यप्रत्यय होता है। **स्वार्थेऽपि**–उपर्युक्त प्रत्यय स्वार्थ में भी होते हैं।

भागरूप–भागरूप नामसे धेय प्रत्यय होता है, स्वार्थ मे। **अणीनयोः**–अण् और इन् प्रत्ययों के परे युष्मद्–अस्मद् शब्द को (एकवचन मे) यथाक्रम से तवक, ममक और (द्विवचन–बहुवचनमें) युष्माक, अस्माक आदेश होते हैं। **वत्तुल्ये**–सादृश्य अर्थ मे वत् प्रत्यय होता है। **भावे**–भाव मे त, त्व और

समाहारे ता च त्रेर्गुणश्च ॥ २८ ॥ त्रयाणां समाहारः त्रेता । जनानां समूहो जनता । देवता । **कर्मण्यपि यण् वक्तव्यः*** ब्राह्मणस्य कर्म ब्राह्मण्यम् । राजा इदं कर्म राज्यम् (१) राजन्यम् ॥ २८ ॥

लोहितादेर्डिमन् ॥ २९ ॥ लोहितादेर्भावेऽर्थे इमन् प्रत्ययो भवति, स च डित् । डित्त्वाट्टिलोपः । लोहितिमा । आणोर्भावः अणिमा । लघोर्भावो लघिमा । महतो भावो महिमा ॥ २९ ॥

ऋ र इमनि ॥ ३० ॥ ऋकारस्य रेफो भवति इमनि परे । प्रथिमा द्रढिमा ॥ ३० ॥ बहोर्भाव इति विग्रहे--

बहोरिलोपो भू च बहो ॥३१॥ बहोरुत्तरेषामिमनादीनामिकारस्य लोपो भवति । बहो स्थाने भू आदेशः । बहोर्भावो भूमा (२) ॥ ३१ ॥

अस्त्यर्थे मतुः ॥ ३२ ॥ नाम्ना मतुः प्रत्ययो भवति (३) अस्यास्मिन्वास्तीत्येतस्मिन्नर्थे । उकारो नुम्विधानार्थः । 'वृतो नुम्' गोमान् श्रीमान् । गोमती श्रीमती । आयुष्मान् ॥ ३२ ॥

अइकौ मत्वर्थे ॥ ३३ ॥ मत्वर्थे अ इकौ (४) प्रत्ययौ भवतः । वैजयन्ती पताका अस्य अस्मिन् वा वैजयन्तः प्रासादः । मायी विद्वान् अस्यास्मिन्वा मासिकः ॥ ३३ ॥

---

(१) राज्यमिति । 'ना वा' इति टिलोपः । (२) भूमेति । पृथुमृदुदृढ-कृशेत्यादीनामिमनिरादेशः । प्रथिमा, म्रदिमा, द्रढिमा, क्रशिमा इत्यादि ।

(३) अस्यास्मिन् वेति । अत्र हि तदस्यास्मिन्नित्युक्त्यैव विद्यति क्रियांविना सफलवाक्यार्थबोधाभावात् अस्तिक्रियायाः सिद्धत्वेऽपि अत्र सूत्रेऽस्तिग्रहणं नोपाध्यर्थं किन्तु अस्तिशब्दान् मतु-सिद्ध्यर्थम् । तेन 'अस्तिमान्' इति प्रयोगः सिद्धः । धनवान् इत्यर्थः । (४) अ इकाविति । अकारो क्वचित् णिदपि

यण् प्रत्यय होते है । **समाहारे**—समाहार अर्थ में ता प्रत्यय और त्रिको गुण होता है । **कर्मण्यपि**—कर्ममें भी यण् प्रत्यय होता है । **लोहितादेः**—लोहितादि गण से भाव मे इमन् प्रत्यय होता है । **ऋ र**—इमन् प्रत्यय के परे ऋकार को रेफ होता है । **बहोरिलोपः**—बहु शब्द से पर इमन् आदि प्रत्ययों के इकार का लोप और बहु शब्दको भू आदेश होता है । **अस्त्यर्थे**—अस्ति अथवा अस्मिन् अर्थमें प्रथमान्त नामसे मतु प्रत्यय होता है । **अइकौ**—मत्वर्थमे अ और इक

मान्तोपधाद्वत्विनौ ॥ ३४ ॥ मकारान्तान्मकारोपधादकारान्तादकारोपधाच्च वत्विनौ प्रत्ययौ भवतोऽस्त्यर्थे । किवान् लक्ष्मीवान् भगवान् । धनी दण्डी छत्री दृषद्वती भूमिः । शमी कामी ॥ ३४ ॥

तडिदादिभ्यश्च ॥ ३५ ॥ एभ्यो वतुप्रत्ययो भवति । (१) तडित्वान् विद्युत्वान् मरुत्वान् ॥ ३५ ॥

एतत्कियत्तद्भ्यः परिमाणे वतुः ॥ ३६ ॥

यत्तदोरा ॥३७॥ यत्तदोष्टेरात्वं भवति वतौ परे । यावान् तावान् ॥३७॥

किमः किर्यश्च ॥ ३८ ॥ किम्शब्दस्य किरादेशो भवति वतौ परे । चकाराद् वकारस्य च यकारो भवति । कियान् ॥ ३८ ॥

आ इश्चैतदो वा ॥ ३९ ॥ वतुप्रत्यये परे एतच्छब्दस्य आ इश् इत्येनावादेशौ भवतः । 'गुरुः शिच्च' इति शित्वात्कृत्स्नस्य आ इति प्राप्तस्तथापि चकारादन्त्यस्यैव टेकारादेशो भवति न कृत्स्नस्य । यस्मिन् पक्षे आ इशादेशस्तस्मिन्पक्षे प्रत्ययस्य यकारादेशो भवति । एतावान् इयान् ॥ ३९ ॥

तुन्दादेरिलः ॥ ४० ॥ तुन्दादेरिलप्रत्ययो भवति अस्त्यर्थे । तुन्दमस्यास्तीति तुन्दिलः (२) ॥ ४० ॥

भवति यथा प्रज्ञा अस्ति अस्येत्यर्थे प्राज्ञः । क्वचित् स्वार्थेऽपि अ प्रत्ययो भवति । (१) तडिदादिभ्यश्चेति । चकारात् तान्तदान्ताभावेऽपि हसान्तमात्राद्वतुः भवतीति केचित् । राजन्वान् राजन्वती उदन्वान् । 'उदन्वानुदधिः सिन्धुः' इत्यमरः । (२) 'चूडासिध्मादेश्च लप्रत्ययः' चूडालः । सिध्मलः । मांसलः । अंसलः । इत्यादि ।

प्रत्यय होते है । **मान्तोपधा**—मकारान्त मकारोपधसे और अकारान्त अकारोपधसे अस्ति अर्थमे वतु और इन प्रत्यय होते है । **तडिदादिभ्यश्च**—तडिदादि शब्दोंसे वतु प्रत्यय होता है । **एतत्**—एतद्, किम्, यद् और तत् शब्दोंमे परिमाण अर्थमें वतु प्रत्यय होता है । **यत्तदोरा**—यद् और तद् शब्दोंके 'टि' को वतु प्रत्ययके परे आत्व होता है । **किमः**—किम् शब्दको कि और वतु प्रत्ययके वकारको यकार आदेश होता है । **आ इश्चैतदो**—एतद् शब्दके 'टि' को आत्व और 'एत्' को इश आदेश विकल्पसे होता है । **तुन्दादेः**—तुन्दादिसे अस्त्यर्थमें इल प्रत्यय होता है ।

औन्नत्ये दन्तादुरः ॥ ४१ ॥ उन्नता दन्ता यस्य सः दन्तुरः । **ऐश्वर्येऽर्थे स्वादामिन्*** स्वमी । **गन्धादेरिः*** सुगन्धि. । आमगन्धिः ॥ ४१ ॥

श्रद्धादेर्लुः ॥ ४२ ॥ श्रद्धादेर्गणाल्लुप्रत्ययो भवति । श्रद्धास्यास्तीति श्रद्धालुः । दयालुः । कृपालुः । **अस्मायामेधास्रग्भ्योऽस्त्यर्थे विन् वक्तव्यः*** तपोऽस्यास्तीति तपस्वी । मायावी । मेधावी । स्रग्वी ॥ ४२ ॥

वाचो ग्मिनिः ॥ ४३ ॥ वाग्ग्मी ॥ ४३ ॥

आलाटौ कुत्सितभाषिणि ॥ ४४ ॥ वाचालः । वाचाटः ॥ ४४ ॥

ईषदसमाप्तौ कल्पदेश्यदेशीयाः ॥ ४५ ॥ ईषदपरिसमाप्तः सर्वज्ञः सर्वज्ञकल्पः । पटुदेश्यः कविदेशीयः ॥ ४५ ॥

प्रशंसायां रूपः ॥ ४६ ॥ प्रशस्तो वैयाकरणो वैयाकरणरूपः ॥ ४६ ॥

पाशः कुत्सायाम् ॥ ४७ ॥ कुत्सितो वैयाकरणो वैयाकरणपाशः ॥४७॥

भूतपूर्वे चरट् ॥ ४८ ॥ दृष्टचरः । दृष्टचरी(१) ॥ ४८ ॥

प्राचुर्यविकारप्राधान्यादिषु मयट् ॥ ४९ ॥ अन्नं प्रचुरं यस्मिन् स.

---

(१) **दृष्टचरी । टित्वादीप् ।**

औन्नत्ये—दन्त शब्दसे उच्चत्व अर्थमे उर प्रत्यय होता है । **ऐश्वर्ये**—ऐश्वर्य अर्थमे स्व शब्दसे आमिन् प्रत्यय होता है । **गन्धादेरिः**—गन्ध शब्दसे रि प्रत्यय होता है ।

श्रद्धादेर्लु—श्रद्धादि गणपठित शब्दोंसे लु प्रत्यय होता है । **अस्माया**—अस् प्रत्ययान्त शब्द और माया, मेधा तथा स्रग् शब्दोंसे अस्त्यर्थमे विनि प्रत्यय होता है । **वाचोग्मिनि**—अस्त्यर्थमे वाच् शब्दसे ग्मिनि प्रत्यय होता है । **अलाटौ**—कुत्सित (निन्दित, अधिक भाषण) अर्थमे वाच् शब्दसे आल और आट प्रत्यय होते हैं । **ईषदसमाप्तौ**—किंचित् समाप्ति अर्थमे कल्प, देश्य और देशीय प्रत्यय होते है । **प्रशंसायां**—प्रशंसा अर्थमे नामसे रूप प्रत्यय होता है ।

पाश—निन्दा अर्थमे नामसे पाश प्रत्यय होता है ।

भूतपूर्वे चरट्—भूतपूर्व (पहले हुए) अर्थमे चरट् प्रत्यय होता है ॥

प्राचुर्यविकार—प्राचुर्य, विकार और प्राधान्य अर्थमें मयट् प्रत्यय होता है ।

अन्नमयो यज्ञः। मृन्मयो घटः। स्त्रीमयो जाल्मः। अमृतमयश्चन्द्रः। **तदधीते वेत्यत्राण् वक्तव्यः*** व्याकरणमधीते वेद वा वैयाकरणः। शोभनः अश्वः स्वश्वः वेत्ति सौवश्वः ॥ ४९ ॥

न सन्धिय्वोर्युट् च ॥ ५० ॥ सन्धिजौ य्वौ सन्धिय्वौ तयोः संधिजयोर्यकारवकारयोः सम्बन्धिनः स्वरस्य वृद्धिर्न भवति किन्तु तयोर्युडागमो भवति। इट् उट् इत्येतावागमौ भवत.। वर्णविश्लेषं कृत्वा यकारात्पूर्वमिकारः। वकारात्पूर्वमुकारः। **स्वरहीनं परेण संयोज्यम्*** 'आदिस्वरस्य ञ्णिति वृद्धिः' वैयाकरणः सौवश्वः ॥ ५० ॥

इतो जातार्थे ॥ ५१ ॥ लज्जितः। पण्डितः। नृपितः ॥ ५१ ॥

तरतमेयस्विष्ठाः प्रकर्षे ॥ ५२ ॥ अतिशयेऽर्थे तर तम ईयसु इष्ठ इत्येते प्रत्यया भवन्ति। अतिशयेन कृष्णः कृष्णतरः। अतिशयेन शुक्लः शुक्लतमः ॥ **ईयस्विष्ठौ डिताविति वक्तव्यौ*** 'डिति टेर्लोपः' उकारो नुम्विधानार्थः। 'न्सम्महृ–' इति दीर्घः अतिशयेन लघुः लघीयान् लघिष्ठः लघीयसी। अतिशयेन पापः पापिष्ठः पापीयान् पापीयसी ॥ ५२ ॥

गुर्वादेरिष्ठेमेयस्सु गरादिष्ठिलोपश्च ॥ ५३ ॥ १ गुरु २ प्रिय ३ स्थिर ४ स्फिर ५ उरु ६ बहुल ७ वृद्ध ८ दीर्घ ९ प्रशस्य १० बाढ ११ युवन् १२ अल्प १३ स्थूल १४ दूर १५ अन्तिकानां क्रमेण १ गर २ प्र ३ स्थ ४ स्फ ५ वर् ६ बंहि ७ ज्या ८ द्राघ ९ श्र १० साध ११ यव १२ कन १३ स्थव १४ दव

तदधीते–तत् = शास्त्र आदि पठन मे वा जानने अर्थ में नाम मे अण् प्रत्यय होता है।

न सन्धिय्वौ–सन्धिज यकार, वकार सम्बन्धी स्वरको वृद्धि नहो होती किन्तु वर्णविश्लेषकरके यकार–वकारको इट् और उट्का आगम होता है। **स्वरहीनं–**स्वरसे हीन वर्ण पर वर्णसे जाकर मिलता है। **इतो जातार्थे–**प्रथमान्त नामसे जात (उत्पन्न) अर्थमें इत प्रत्यय होता है। **तरतमेय–**अतिशय अर्थमें नामसे तर, तम, ईयसु और इष्ठ प्रत्यय होते है। **ईयसु–**ईयसु और इष्ठ दोनों प्रत्यय डित्संज्ञक होते हैं। **गुर्वादेरिष्ठे–**इष्ठ, इमन् और ईयसु प्रत्ययके परे गुर्वादि के स्थानमें गर आदि आदेश होते हैं।

ईलोपो–ज्या शब्दसे पर ईयस् प्रत्ययके ईकारका लोप होता है।

१५ नेद, एते आदेशा भवन्ति। अतिशयेन गुरुः गरीयान् गरिष्ठः। गुरोर्भावो गरिमा। अतिशयेन प्रियः प्रेयान प्रेष्ठः प्रेमा। अतिशयेन स्थिरः स्थेयान् स्थेष्ठः स्थेमा। अतिशयेन उरुः वरीयान् वरिष्ठ.। अतिशयेन स्फिरः स्फेयान्। अतिशयेन बहुलः बंहीयान्। अतिशयेन वृद्धः। **ईलोपो ज्याशब्दादीयसः*** ज्यायान् ज्येष्ठ.। अतिशयेन दीर्घः द्राघीयान् द्राघिष्ठः द्राघीयसी द्राघिमा। प्रशस्यस्य श्रादेशः। श्रेयान् श्रेष्ठः। अतिशयेन बहुः भूयिष्ठः। दूरस्य दवादेशः। दविष्ठः दवीयान् दवीयसी। क्षिप्रशब्दस्य क्षेपादेशः। क्षेपिष्ठ क्षेपीयान्। क्षुद्रशब्दस्य क्षोदादेशः। क्षोदीयान् ॥५३॥

बहोरिष्ठे यिः ॥ ५४ ॥ बहोरुत्तरस्येष्ठप्रत्ययस्येकारस्य यिर्भवति बहोः स्थाने भूश्चादेश ईयस ईलोपश्च। भूयान् भूयिष्ठ ॥ **किमोऽव्ययादाख्याताच्च तरतमयोरारम्भकत्वम्*** । कुतस्तरां परमाणवः। कुतस्तमां नेयारम्भकत्वं। उच्चैस्तरां गायति। पचतितराम्। पचतितमाम् ॥ ५४ ॥

अव्ययसर्वनाम्नामकच्प्राक् टेः ॥ ५५ ॥ उच्चैरेव–उच्चकैः। यकः सकः। सर्व एव–सर्वकः त्वयका। मयका ॥ ५५ ॥

परिमाणे दघ्नादयः ॥ ५६ ॥ परिमाणेऽर्थे दघ्नट् द्वयसट् मात्रट् इत्येते प्रत्यया भवन्ति। जानुदघ्नं जलम्। शिरोद्वयसम् पुरुषमात्रम्। **द्वयोर्बहूनां चैकस्य निर्धारणे किमादिभ्यो डतरडतमौ वक्तव्यौ*** कतरो भवता काण्वः। कतमो भवता तान्त्रिकः। भवतोर्यतरस्तार्किकस्ततर उद्गृह्णातु ॥ ५६ ॥

संख्येयविशेषावधारणे द्वित्रिभ्यां तीयः ॥ ५७ ॥ द्वयोः संख्यापूरकः द्वितीय। **त्रेः संप्रसारणम्*** त्रयाणां संख्यापूरकः तृतीयः ॥ ५७ ॥

बहोरिष्ठे—बहु शब्द से पर इष्ठके इकारको यि और बहुको भू आदेश होता है। **किमोऽव्यया**–किम्, अव्यय और आख्यात (तिङन्त) से तर और तम प्रत्यय होते हैं। **अव्यय**–अव्यय और सर्वनाम के 'टि' से पूर्व अकच् होता है, स्वार्थ मे। **परिमाणे**–परिमाण अर्थ मे दघ्नट्, द्वयसट् और मात्रट् प्रत्यय होते है। **द्वयोर्बहूनां**–दो या बहुतोंके मध्यमे एकका निर्धारण (पृथक्करण) अर्थमे किम् यत्, तत् और एक शब्द से डतर और डतम प्रत्यय होते है। **संख्येय**–संख्येय (संख्या करने योग्य) के विशेषावधारणमें द्वि, त्रि शब्दसे तीय प्रत्यय होता है।

त्रेःसम्प्र–त्रि शब्दको सम्प्रसारण होता है।

षट् चतुरोस्थट् ॥ ५८ ॥ षष्ठः चतुर्थः ॥ ५८ ॥

पञ्चादेर्मट् ॥ ५९ ॥ पञ्चमः । सप्तमः । अष्टमः । नवमः ॥ ५९ ॥

विंशत्यादेर्वा तमट् ॥६०॥ विंशतितमः विंशतिः ॥ ६० ॥

विंशतेस्तिलोपो डिति ॥ ६१ ॥ विंशः विंशतम ॥ ६१ ॥

शतादेर्नित्यम् ॥ ६२ ॥ शततमः ॥ ६२ ॥

एकादशादेर्डच् ॥ ६३ ॥ एकादशः । द्वित्र्यष्टानां द्वा त्रयो अष्टाः द्वादशः त्रयोदशः अष्टादश ॥ ६३ ॥

कतिकतिपयाभ्यां थः ॥ ६४ ॥ कतिथः । कतिपयथः ॥ ६४ ॥

संख्यायाः प्रकारे धा ॥ ६५ ॥ द्विप्रकारं द्विधा चतुर्धा ॥ ६५ ॥

गुणोऽण् च ॥ ६६ ॥ द्वेधा त्रेधा । णित्त्वात् वृद्धि । दस्य लोपः । अतोम् द्वैधम् त्रैधम् ॥ ६६ ॥

क्रियाया आवृत्तौ कृत्वस् ॥ ६७ ॥ पञ्चकृत्वः । सप्तकृत्वः ॥ ६७ ॥

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुः ॥ ६८ ॥ द्विवारमिति द्विः । त्रिवारमिति त्रिः । चतुर्वारमिति चतुः । द्विरुक्तम् । त्रिरुक्तम् ॥ ६८ ॥

बह्वादेः शस् ॥ ६९ ॥ बहुवारानिति बहुशः । अल्पशः । शतशः ॥६९॥

षट्चतुरो–षट् और चतुर् शब्द से सख्या पूरण अर्थ मे थट् प्रत्यय होता है। **पञ्चादेर्मट्**–पञ्चन्, सप्तन्, अष्टन्, नवन् और दशन् शब्दोंसे मट् प्रत्यय होते हैं। **विंशत्यादेः**–विंशति आदिसे तमट् प्रत्यय विकल्पसे होता है। **विंशतेः**–विंशति शब्दके ति का लोप होता है, डित् के परे। **शतादेर्नि**–शत आदि शब्दोंसे नित्य ही तमट् प्रत्यय होता है। **एकादशादेर्डच्**–एकादशादि शब्दोंसे डच् प्रत्यय होता है। (किसी पुस्तकमे 'एकादशादेर्डट्' ऐसा सूत्र है। डट् होनेपर 'एकादशः=एकादशी' ऐसा प्रयोग होगा) **कतिकति**–कति और कतिपय शब्दसे संख्या पूरण अर्थमे 'थ' प्रत्यय होता है। **संख्यायाः**–संख्यावाची शब्दोंसे प्रकार अर्थमे 'धा' प्रत्यय होता है।

गुणोऽण् च–धाप्रत्ययान्त शब्दोंको गुण हो और चकारात् स्वार्थमें अण् प्रत्यय भी हो, विकल्पसे। क्रियायाः–क्रियाकी आवृत्ति (पौनः पुन्य-बारम्बार) अर्थमे संख्यावाचक शब्दोंसे कृत्वस् प्रत्यय होता है। **द्वित्रि-चतुर्भ्यः**–द्वि, त्रि और चतुर शब्दसे पर सु प्रत्यय होता हैं। **बह्वादेः**–बहु,

तयडयटौ संख्याया अवयवे ॥ ७० ॥ संख्याया अवयवे वाच्ये तयडयटौ प्रत्ययौ भवतः । द्वौ अवयवौ यस्य तद् द्वितयम् । त्रितयम् । द्वयम् । त्रयम् ॥ ७० ॥

उभशब्दादयट् ॥ ७१ ॥ उभयः ॥ ७१ ॥

अल्पे कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः ॥७२॥ अल्पा कुटी इति कुटीरः । शमीरः । अल्पा शुण्डा इति शुण्डारः ।

स्त्रीपुंसाभ्यां नणस्नणौ ॥ ७३ ॥ स्त्रैणम् । पौंस्नम् ॥ ७३ ॥

शेषा निपात्याः कत्यादयः ॥ ७४ ॥ का संख्या येषां ते कति । या संख्या येषां ते यति । सा संख्या येषां ते सति ॥ ७४ ॥

इत्यनुभूतिस्वरूपाचार्यप्रणीतसारस्वतव्याकरणस्य पूर्वार्धं सम्पूर्णम् ।

अल्प, शत, सहस्र, लक्ष, कोटि आदि शब्दोंसे शस् प्रत्यय होता है।

तयडयटौ–अवयव अर्थमे संख्यावाचीसे तयट् और अयट् प्रत्यय होते हैं।

उभशब्दात्—अवयव अर्थमे संख्यावाची उभ शब्दसे अयट् प्रत्यय होता है।

अल्पे कुटी–अल्पार्थमे कुटी, शमी और शुण्ड शब्दसे र प्रत्यय होता है।

स्त्रीपुंसाभ्यां–अपत्यादि अर्थोंमे स्त्री शब्दसे नण् और पुंस शब्दसे स्नण् प्रत्यय होता है।

शेषा निपाताः–शेष (जो इस ग्रन्थ मे नही कहे गए हैं वे) कति, यति, सति आदि शब्द निपातनसे सिद्ध होते है।

इस प्रकार दरभङ्गा मण्डलान्तर्गत 'तरौनी' ग्रामवासी पं० श्रीरामचन्द्र झा व्याकरणाचार्य विरचित 'इन्दुमती' हिन्दी टीका मे सारस्वत-व्याकरणका पूर्वार्ध समाप्त हुआ।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥